समय सार

श्री कुन्द कुन्दाचार्य

प्रकाशक
नानकचन्द जैन

❋ ॐ ❋

श्रीमत्कुन्द कुन्दाचार्य विरचितः

समय पाहुड़ (समय सारः)

पण्डित जयचन्द्र जी कृत

व

पंडित मनोहरलाल जी परिवर्तित

हिन्दी अनुवाद सहित

जिसको

नानकचन्द जैन एडवोकेट

मंत्री जिनवाणी प्रकाशन विभाग श्री जैन मंदिर जी

सराय रोहतक ने प्रकाशित किया।

—:❋:—

वीर निर्वाण सम्वत् २४६८

प्रकाशक के दो शब्द

समयसारजी का प्रस्तुत संस्करण जयपुर निवासी स्वर्गीय पं० जयचन्द्रजीके अनुवाद पर अवलम्बित है। ग्रन्थके रचयिता प्रातः स्मरणीय भगवान् कुन्दकुन्दका नाम लेनेमें प्रत्येक जैनी अपना गौरव समझता है। और प्रायः सभी आचार्योंने भगवान् कुन्दकुन्दको अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई है। प्रत्येक माङ्गलिक कार्यमें स्वामी कुन्दकुन्दका नाम भगवान् महावीर और गणधर गौतम-स्वामीके साथ लिया जाता है, जैसाकि मुख-पृष्ठ पर दिए हुए 'मङ्गलं भगवान् वीरो' इत्यादि श्लोकसे प्रकट है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य का जन्म ईसाकी प्रथम-शताब्दि के लगभग हुआ है, ऐसा पट्टावलियों से जाना जाता है। आप एक बहुत-बड़े योगी, गम्भीर-विचारक और उच्चकोटि के महात्मा थे। आपकी अनेक रचनाओंमें समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ और मूलाचार आदि ग्रन्थ अपना खास महत्त्व रखते हैं। प्रस्तुत समयसार ग्रन्थ विशेषकर आध्यात्मिकरस से ओत-प्रोत है। इसका अध्ययन जीवन को सुखमय और सफल बनाता है। इसके मननसे अनिर्वचनीय और असीम आनन्द मिलता है, जीवनका लक्ष्य आंखोंके सामने आजाता है, मनुष्य अपने आपको

संसारकी मायासे पृथक समझने लगता है और उसका आत्मबल जागृत हो उठता है। साथही भेद-विज्ञानके प्रकट होनेसे विषय-वासना चली जाती है, निश्चय-व्यवहारका द्वन्द मिट जाता है, चारित्रमें दृढता, निर्मलता एवं सुन्दरता आजाती है और इस तरह आत्म-रूपका सहज ही में विकास होजाता है। इस परसे ग्रन्थकी उपयोगिता स्पष्ट है।

यह समयसार ग्रन्थ जैनियों के सभी सम्प्रदायोंको प्रिय, इष्ट तथा मान्य है; और इसीसे विभिन्न जैन सम्प्रदायों द्वारा इसके कितने ही संस्करण अबतक प्रकाशमें आचुके हैं। वास्तवमें स्वामी कुन्दकुन्द ने इस ग्रन्थ-रत्न को प्रस्तुत करके प्राणीमात्रका बड़ा भारी उपकार तथा कल्याण किया है। हम भी आत्म-कल्याण की भावना से प्रेरितहोकर भक्ति के साथ ग्रन्थका यह संस्करण जनताके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है इस जड़वाद और घोर संकटके समयमें ग्रन्थ का यह प्रकाशन सभीके लिये हितकर और सुखदायी होगा।

इस अवसर पर हम श्रीमती सौभाग्यवती चमेलीदेवी धर्मपत्नी बाबू लालचन्द जी जैन एडवोकेट रोहतक के बहुत आभारी हैं और उनका हृदयसे धन्यवाद करते हैं जिन्हों ने सुगन्धदशमी-व्रतके उद्यापनके उपलक्ष्यमें इस ग्रन्थके प्रकाशनार्थ

२२५) प्रदान करके हमें इस ग्रन्थके प्रकाशन के लिये उत्साहित किया और बादको ग्रन्थके प्रकाशनमें और भी जितने रुपये खर्च हुए वे सब भी बड़ी उदारताके साथ प्रदान किये हैं।

अन्तमें हम श्रीमान् ला० जुगलकिशोरजी जैन मालिक फर्म ला० धूमीमल धर्मदास कागजी देहली के भी बहुत आभारी है, जिन्होंने इस ग्रन्थ की छपाई और तय्यारी में बड़ा परिश्रम किया है, और जिसके कारण हमें मुद्रण-सम्बन्धी कोई चिन्ता उठानी नहीं पड़ी है।

श्रावणी—पूर्णिमा
वीर-निर्वाण संवत् २४६८

नानकचन्द जैन ऐडवोकेट
सैक्रेटरी—'जिनवाणी प्रकाशक विभाग'
जैनमन्दिर सराय, रोहतक

इस पंचमकालमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य्य बड़े तत्त्वज्ञानी योगी जैन सिद्धान्तके स्वामी प्रामाणिक सर्वज्ञतुल्य शास्त्र समुद्र के पारगामी विक्रम सम्वत् ४६ के अनुमान होगये हैं जिनके ग्रन्थ श्री समयसार-नियमसार-प्रवचनसार व पंचास्तिकाय बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें सारभूत तत्वों का विवेचन है जो इस सर्व कथनं को समझ जायगा वह अवश्य सम्यग्दृष्टि व आत्म ज्ञानी हो जायगा।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद
(जैन धर्म भूषण, धर्म दिवाकर)

Extracts from the note book of the Late Rai Bahadur Jagmander Lal Jaini M.A. (Oxon), M.R.A.S., Barrister-at-Law, President Legislative Council, Indore.

"The music honey of Kund Kunda's Vision of Reality sinks soft and subtle into my pure soul, and mixing with it, awakens it to the sweet sound of its own self, filling it with a joy that is deeper than the deepest oceans."

* * * * *

"The joy of life, the beatitude of Being, of the pure unalloyed feeling of mere being, of being oneself, remains. It is delicious, all prevading all-conquering. It is the self-absorption of the Real standpoint of Kund Kunda blessed be his pure name. Up till now, next to Lord Baba, his is to my mind the purest personality, the truest teaching, yet known to me."

Extracts from "An introduction to Jain Philosphy" by the late Rai Bahadur Jagmandar Lal Jaini M.A. (Oxon), M.R.A.S., Bar-at-Law., President Legislative Council, Indore.

"Samayasara is full of the one idea of one concentrated divine unity. This is the only one Idea which counts. All Truth, Goodness, Beauty, Reality, Morality, Freedom is in this. The self and it alone is true, good, lovely, real, moral. The non-self is error, myth, mithyatva, ugly, deluding, detractor from and obscurer of reality, immoral, worthy of shunning and renunciation, as bondage and as anti-Liberation. This Almighty, all-Comprehensive, claim of Self-Absorption must be perfectly and completely grasped for any measure of success in understanding Shri Kunda Kunda Acharya's works, indeed for the true understanding of Jainism.

Sva-Samaya or Self-Absorption is the key-note, the purpose, the lesson, the object, the goal and the centre of Shri Kunda Kunda's all works and teachings. The Pure, All-Conscious, Self-absorbed soul is God and never less or more. Any connection Causal or Effectual with the non-self is a delusion, limitation, Imperfection, bondage."

"It may well and legitimately be asked; what is the practical use of this Jaina idea of self-Absorption ?"

"The answer is: The mere insight into and knowledge of this Real Reality, is of everyday use in the conduct of our individual and collective lives. It is a true and the only panacea for all our ills. Its rigour may be hard. Its preliminary demand may occasion a wrench from our cherished habits, customs, and fashions

of thought and action. But its result which is immediate, instantaneous and unmistakable, justifies the hardship and the demand. The relief and service, the sure uplift of ourselves, the showering of calm balm, by the practice of self-realization upon the sore souls of our brethren and sisters, justify the price paid."

"Once you sit on the rock of Self-realization, the whole world goes round and round you like a crazy rushing something, which has lost its hold upon you and is mad to get you again in its grip, but cannot. The All-conquering smile of the Victor (Jina) is on your lips. The vanquished, deluding world lies dead and impotant at your feet."

विषय सूची

		पृष्ठ
मंगलाचरण	(गा.१)	३

१—जीव अजीव अधिकार में रंगभूमि

स्व समय परसमय	(गा.२)	४
आत्मज्ञान दुर्लभ है	(गा.४)	५
ज्ञायक भाव प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है	(गा.६)	७
व्यवहार की आवश्यक्ता	(गा.८)	८
शुद्ध नय का स्वरूप	(गा.१४)	१२
ज्ञानी अज्ञानी का भेद	(गा.२०—२२)	१६
जितेन्द्रिय	(गा.३१)	२२
जित मोह	(गा.३२)	२३
क्षीणमोह	(गा.३३)	२३
आत्मस्वरूप	(गा.३८)	२६

२—जीवाजीव अधिकार

आत्म स्वरूप की विविध मान्यतायें	(गा.३९)	२८
अध्यवसान आदि जीव नहीं है	(गा.४४)	३०

कर्म भी जीव नहीं है	(गा.४५)	३१
योगस्थान, गुणस्थान जीव नहीं हैं	(गा.५३)	३६
एकेन्द्रियादि पर्याय भी जीव नहीं है	(गा.६५)	४४

३—कर्तृ कर्माधिकार

कर्म बन्ध के कारण	(गा.६९)	४७
आश्रव के क्षय का कारण	(गा.७३)	४९
आश्रव से निवृत्ति का हेतु	(गा.७४)	५०
ज्ञानी कौन है	(गा.७५)	५१
कर्तृ कर्म भाव का अभाव	(गा.८०)	५४
एक द्रव्य की २ क्रियाओं का निषेध	(गा.८६)	५७
अज्ञानी कर्म का कर्त्ता है	(गा.९२)	६१
भाव कर्म व नोकर्म जीव से भिन्न हैं	(गा.१०९)	७०
ज्ञानी अकर्त्ता है	(गा.१२७)	७९
समयसार का स्वरूप	(गा.१४४)	८८

४—पुण्य पाप अधिकार

कर्म शुभ हो या अशुभ अच्छा नहीं	(गा.१४५)	९०
रागबंध का कारण है	(गा.१५०)	९३
पुण्य मोक्ष का कारण नहीं है	(गा.१५४)	९६
व्यवहार मार्ग कर्मक्षय का कारण नहीं है	(गा.१५६)	९७

५—आश्रव अधिकार

आश्रव के भेद	(गा.१६४)	१०३
ज्ञानी के आश्रव का अभाव	(गा.१६६)	१०४
राग ही आश्रव का कारण है	(गा.१६७)	१०५
शुद्ध नय के त्याग से कर्म बंध होता है	(गा.१७६)	१११

६—संवर अधिकार

उपयोग और कर्म की भिन्नता	(गा.१८१)	११४
शुद्ध उपयोग और आत्म विकाश	(गा.१८६)	११७
निश्चय संवर का स्वरूप	(गा.१८७)	११८

७—निर्जरा अधिकार

ज्ञानी के भोग से निर्जरा	(गा.१९३)	१२३
ज्ञानी कर्मोदय में अबद्ध है	(गा.१९५)	१२४
ज्ञानी का अनुभव ज्ञायक मात्र है	(गा.१९९)	१२६
ज्ञान ही निर्जरा का कारण है	(गा २०५)	१३०
ज्ञान ही उत्तम सुख है	(गा.२०६)	१३०
ज्ञानी इच्छा रहित है	(गा.२१०)	१३३
सम्यक्त्व के अंग	(गा.२२८)	१४२

८—बंधाधिकार

बंध का कारण	(गा.२३७)	१४८
अध्यवसान ही बंध है	(गा.२६५)	१६३
आत्मा अकारक है	(गा.२८३)	१७२

९—मोक्ष अधिकार

मोक्ष का उपाय	(गा.२८८)	१७६
प्रज्ञा से आत्म ग्रहण	(गा.२९६)	१८१
अपराध से बंध	(गा.३०४)	१८६
षट् कर्म का निषेध	(गा ३०७)	१८७

१०—सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार

द्रव्य में कर्त्ता कर्म का निषेध	(गा.३०८)	१९०
बंध कर संसार की उत्पत्ति	(गा ३१७)	१९२
ज्ञानी कर्मफल का भोक्ता नहीं	(गा.३१६)	१९४
अज्ञान का कर्त्ता कौन है	(गा.३२८)	२०२
जीव कर्म करता हुआ उससे तन्मय नहीं होता	(गा.३४९)	२१२
एक द्रव्य से दूसरा द्रव्य नहीं उपजता	(गा.३७२)	२२६
इन्द्रिय के विषय जीव के नहीं	(गा.३७६)	२३०
निश्चय प्रति क्रमण आदि	(गा.३८३)	२३४
ज्ञान की अन्य भावों से भिन्नता	(गा.३९०)	२३८
मोक्ष का मार्ग	(गा.४०८)	२५०
आत्मा में निरंतर विहार	(गा.४१२)	२५३
आचार्य का आशीर्वाद	(गा.४१५)	२५५

समयपाहुड़

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमोगणी ।
मंगलं कुन्द कुन्दाख्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलं ॥

समयसार

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ।।

समयसार जिनराज है, स्यादवाद जिनवैन ।
मुद्रा जिन निरग्रंथता, नमूं करै सब चैन ।।

(१)

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं ॥

आचार्य कहते हैं, मैं ध्रुव अचल और अनुपम इन तीन विशेषणोंकर युक्त गतीको प्राप्त हुए ऐसे सब सिद्धोंको नमस्कार कर हे भव्यो श्रुतकेवलियोंकर कहे हुए इस समयसार नामा प्राभृत को कहूंगा।

(२)

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण ।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ॥

हे भव्य, जो जीव दर्शन ज्ञान चारित्र में स्थित हो रहा है उसे निश्चयकर स्वसमय जान। और जो जीव पुद्गल कर्मके प्रदेशों में तिष्ठा हुआ है उसे पर समय जान।

(३)

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए ।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥

एकत्वनिश्चय में प्राप्त जो समय है वह सब लोकमें सुंदर है। इसलिये एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा निन्दा कराने वाली है।

(४)

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा ।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥

सबही लोकों को काम भोग विषयक बंध की कथा तो सुनने में आगई है, परिचय में आगई है और अनुभवमें भी आयी हुई है इसलिये सुलभ है। लेकिन केवल भिन्न आत्माका एकपना होना कभी न सुना, न परिचयमें आया और न अनुभवमें आया इसलिये एक यही सुलभ नहीं है।

(५)

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुकिज्ज छलं ण घेतव्वं ॥

उस एकत्वविभक्त आत्माको मैं आत्माके निज विभवकर दिखलाता हूं। जो मैं दिखलाऊं तो उसे प्रमाण (स्वीकार) करना और जो कहींपर चूक (भूल) जाऊं तो छल नहीं ग्रहण करना।

(६)

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥

जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं है और न प्रमत्त ही है। इस तरह उसे शुद्ध कहते हैं। और जो ज्ञायकभावकर जानलिया वह वही है अन्य (दूसरा) कोई नहीं।

(७)

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं ।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥

ज्ञानी के चारित्र, दर्शन, ज्ञान—ये तीन भाव व्यवहारकर कहे जाते हैं। निश्चयकर ज्ञान भी नहीं है चारित्र भी नहीं और दर्शन भी नहीं है। ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है इसीलिये शुद्ध कहा गया है।

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥

जैसे म्लेच्छ जनोंको म्लेच्छ-भाषाके बिना तो कुछ भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण करानेको कोई पुरुष नहीं समर्थ होसकता उसीतरह व्यवहारके बिना परमार्थका उपदेश करना बहुत कठिन है अर्थात् कोई समर्थ नहीं है।

(१०)

जो हि सुएणहिगच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पईवयरा ॥

जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुयकेवली तह्मा ॥

जो जीव निश्चयकर श्रुतज्ञानसे इस अनुभव गोचर केवल एक शुद्ध आत्माको संमुख हुआ जानता है उसे लोकके प्रगट जाननेवाले ऋषीश्वर श्रुतकेवली कहते हैं।

जो जीव सब श्रुतज्ञानको जानता है उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं। क्योंकि सब ज्ञान आत्मा ही है इस कारण आत्माको ही जाननेसे श्रुतकेवली कहा जासकता है।

(११)

ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥

व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है ऐसा ऋषीश्वरोंने दिखलाया है। जो जीव भूतार्थको आश्रित करता है वह जीव निश्चयकर सम्यग्दृष्टि है।

(१२)

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥

जो शुद्धनयतक पहुंच श्रद्धावान हुए तथा पूर्णज्ञान चारित्रवान होगये उनको तो शुद्धका उपदेश (आज्ञा) करनेवाली शुद्धनय जानने योग्य है। यहां शुद्धआत्माका प्रकरण है इसलिये शुद्ध नित्य एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानना। और जो जीव अपरमभाव अर्थात् श्रद्धाके तथा ज्ञान चारित्रके पूर्ण भावको नहीं पहुंचसके साधक अवस्थामें ही ठहरे हुए हैं वे व्यवहारद्वारा उपदेश करने योग्य हैं।

(१३)

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥

भूतार्थ नयकर जाने हुये जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा बंध और मोक्षः ये नवतत्त्व सम्यक्त्व हैं।

(१४)

जो पस्सदि अप्पाणं अवद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥

जो नय आत्माको बंधरहित परके स्पर्शरहित अन्यपनेरहित चलाचलतारहित विशेषरहित अन्यके संयोगरहित—ऐसे पांच भावरूप अवलोकन करता (देखता) है उसे हे शिष्य तू शुद्धनय जान।

(१५)

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥

जो पुरुष आत्मा को अबद्धस्पृष्ट अनन्य अविशेष तथा उपलक्षणसे नियत असंयुक्त इन स्वरूप देखता है वह सब जिनशासनको देखता है। वह जिनशासन बाह्यद्रव्यश्रुत और अभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है।

(१६)

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं ।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥

साधुपुरुषोंको दर्शन ज्ञान चारित्र निरंतर सेवन करने योग्य हैं। और वे तीन हैं तो भी निश्चयनयसे एक आत्मा ही जानो।

(१७)

(१८)

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि ।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥

जैसे कोई धनका चाहनेवाला पुरुष राजाको जानकर श्रद्धान करता है उसके बाद उसकी अच्छी तरह सेवा करता है। इसीतरह मोक्षको चाहनेवाला जीवरूप राजाको जाने और फिर उसीतरह श्रद्धान करे उसके बाद उसका अनुचरण करना अर्थात् अनुभवकर तन्मय होजाय।

(१६)

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥

जबतक इस आत्माके ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भावकर्म और शरीरआदि नोकर्ममें मैं कर्म नोकर्म हूं और ये कर्म नोकर्म मेरे हैं ऐसी निश्चय बुद्धि है तबतक यह आत्मा अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) है।

(२०)

(२१)

(२२)

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ॥

आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि ।
होहिदि पुणोवि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि ॥

एयत्तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो ।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥

[२०]

[२१]

[२२]

जो पुरुष अपने से अन्य जो परद्रव्य सचित्त स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक, मिश्र ग्रामनगरादिक--इनको ऐसा समझे कि मैं यह हूं, ये द्रव्य मुझस्वरूप हैं, मैं इनका हूं, ये मेरे हैं, ये मेरे पूर्व थे, इनका मैं भी पहले था। तथा ये मेरे आगामी होंगे, मैंभी इनका आगामी होऊंगा ऐसा झूठा आत्मविकल्प करता है वह मूढः है मोही है अज्ञानी है। और जो पुरुष परमार्थ वस्तुस्वरूप को जानता हुआ ऐसा झूठा विकल्प नहीं करता है वह मूढ नहीं है ज्ञानी है।

(२३)

(२४)

(२५)

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं ।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो वहुभावसंजुत्तो ॥

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं ।
किह सो पुग्गलदव्वी-भूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥

जदि सो पुग्गलदव्वी-भूदो जीवत्तमागदं इदरं ।
तो सत्तो वत्तुं जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं ॥

[२३]

[२४]

[२५]

जिसकी मति अज्ञान से मोहित है ऐसा जीव इसतरह कहता है कि यह शरीरादि बद्धद्रव्य, धनधान्यादि अबद्ध परद्रव्य मेरा है। वह जीव मोह राग द्वेषादि बहुतभावोंकर सहित है ॥ आचार्य कहते हैं जो जीव सर्वज्ञ के ज्ञानकर देखा गया नित्य उपयोगलक्षणवाला है वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे होसकता है ? जो तू कहता है कि यह पुद्गल-द्रव्य मेरा है ॥ जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप होजाय, तो पुद्गलद्रव्य भी जीवपनेको प्राप्त होजायगा। यदि ऐसा हो जाय तो तुम कह सकते हो कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है। ऐसा नहीं है।

(२६)

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥

(अप्रतिवुद्ध कहता है) कि जो जीव है वह शरीर नहीं है, तो तीर्थंकर और आचार्यों की स्तुति करना है वह सबही मिथ्या (झूठ) होजाय। इसलिये हम समझते हैं कि आत्मा यह देह ही है।

(२७)

ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो ॥

व्यवहारनय तो ऐसा कहती है कि जीव और देह एक ही हैं और निश्चयनयका कहना है कि जीव और देह ये दोनों तो कभी एकपदार्थ नहीं होसकते।

(२८)

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥

जीवसे भिन्न इस पुद्गलमयी देहकी स्तुति करके साधु असल में ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवानकी स्तुति की और वंदना (नमस्कार) की।

(२९)

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥

वह स्तवन निश्चय में ठीक नहीं है, क्योंकि शरीरके गुण केवलीके नहीं हैं। जो केवलीके गुणोंकी स्तुति करता है वही परमार्थ से केवली की स्तुति करता है।

(३०)

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥

जैसे नगरका वर्णन करनेपर राजाका वर्णन नहीं किया होता उसी तरह देहके गुणोंका स्तवन होने से केवलीके गुण स्तवनरूप किये नहीं होते ।

(३१)

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥

जो इंद्रियोंको जीतकर ज्ञानस्वभावकर अन्यद्रव्यसे अधिक आत्माको जानता है । उसको नियमसे जो निश्चयनयमें स्थित साधुलोक हैं वे जितेन्द्रिय ऐसा कहते हैं ।

(३२)

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥

जो मुनि मोहको जीतकर अपने आत्माको ज्ञानस्वभावकर अन्यद्रव्यभावोंसे अधिक जानता है उस मुनिको परमार्थके जाननेवाले जितमोह ऐसा जानते हैं कहते हैं।

(३३)

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥

जिसने मोहको जीत लिया है ऐसे साधुके जिस समय मोह क्षीण हुआ सत्तामेंसे नाश होता है उस समय निश्चयके जाननेवाले निश्चयकर उस साधुको क्षीणमोह ऐसे नामसे कहते हैं।

(३४)

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं ।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं ॥

जिस कारण अपने सिवाय सभी पदार्थ पर हैं ऐसा जानकर त्यागता है इसकारण पर हैं, यह जानना ही प्रत्याख्यान है यह नियमसे जानना। अपने ज्ञानमें त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है दूसरा कुछ नहीं है।

(३५)

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि ।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी ॥

जैसे लोकमें कोई पुरुष परवस्तु को ऐसा जानता है कि यह परवस्तु है तब ऐसा जान परवस्तु को त्यागता है, उसी तरह ज्ञानी सब परद्रव्योंके भावोंको ये परभाव हैं ऐसा जानकर उनको छोड़ता है।

(३६)

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥

जो ऐसा जानें कि मोह मेरा कोई भी संबंधी नहीं, एक उपयोग है वही मैं हूं । ऐसे जानने को सिद्धांत के अथवा आपपरस्वरूप के जानने वाले मोहसे निर्ममत्वपना समझते हैं, कहते हैं ।

(३७)

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥

ऐसा जाने कि ये धर्म आदि द्रव्य मेरे कुछ भी नहीं लगते, मैं ऐसा जानता हूँ कि एक उपयोग है वही मैं हूं । ऐसा जानने को सिद्धांत वा स्वपरसमयरूप समयके जानने वाले धर्मद्रव्य से निर्ममत्वपना कहते हैं ।

(३८)

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारुवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमत्तंपि ॥

(जो दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणत हुआ, आतमा वह ऐसा जानता है कि) मैं एक हूं, शुद्ध हूं, निश्चयकर सदा काल अरूपी हूँ। अन्य परद्रव्य परमाणुमात्रभी मेरा कुछ नहीं लगता है यह निश्चय है।

(जीवाजीव अधिकार में पूर्वरंग समाप्त)

जीवाजीव अधिकार

(३६)

[४०]

[४१]

[४१]

[४२]

[४३]

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवदिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परुविंति ॥
अवरे अज्झवसाणे-सु तिव्वमंदाणुभावगं जीवं।
मरणंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति ॥
कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभायमिच्छंति।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥
जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥
एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
ते ण परमट्ठवाइहि णिच्छयवाईहिं णिद्दिट्ठा ॥

[३९]

[४०]

[४१]

[४२]

[४३]

जो आत्मा को नहीं जानते हुए पर को आत्मा कहने वाले कोई मोही अज्ञानी तो अध्यवसान को और कोई कर्म को जीव कहते हैं। अन्य कोई अध्यवसानों में तीव्रमंद अनुभागगत को जीव मानते हैं। और अन्य कोई नोकर्म को जीव मानते हैं, अन्य कोई कर्म के उदय को जीव मानते हैं, कोई कर्म के अनुभाग को जो अनुभाग तीव्रमंदपनेंरूप गुणोंकर भेद को प्राप्त होता है, वह जीव है ऐसा इष्ट करते हैं। कोई जीव और कर्म दोनों मिले हुए को ही जीव मानते हैं और अन्य कोई कर्मों के संयोग कर ही जीव मानते हैं। इस प्रकार तथा अन्य भी बहुत प्रकार दुर्बुद्धि मिथ्यादृष्टि पर को आत्मा कहते हैं। वे परमार्थ कहने वाले नहीं हैं ऐसा निश्चय वादियों ने कहा है।

(४४)

एए सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पएणा ।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो ति वचंति ॥

ये पूर्व कहेहुए अध्यवसान आदिक भाव हैं वे सभी पुद्गल-द्रव्यके परिणमनसे उत्पन्न हुए हैं ऐसा केवली सर्वज्ञजिनदेवने कहा है, उनको जीव ऐसा कैसे कह सकते हैं ? नहीं कह सकते ।

(४५)

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति ।
जस्स फलं तं वुच्चइं दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥

आठ तरह के कर्म हैं, वे सभी पुद्गलस्वरूप हैं, ऐसा जिन भगवान सर्वज्ञ देव कहते हैं। जिस पचकर उदयमें आनेवाले कर्मका फल प्रसिद्ध दुःख है ऐसा कहा है।

(४६)

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं ।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥

ये सब अध्यवसानादिक भाव हैं वे जीव हैं ऐसा जिनवर देवने जो उपदेश दिया है वह व्यवहारनय का मत है।

(४७)

[४८]

राया हु णिग्गदो त्तिय एसो बलसमुदयस्स आदेसो ।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेको णिग्गदो राया ॥
एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं ।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेको णिच्छिदो जीवो ॥

जैसे कोई राजा सेनासहित निकला वहां निश्चयकर सेनाके समूहको ऐसा कहना है। वह व्यवहार नयसे है कि यह राजा निकला उस सेनामें तो वास्तव में एक ही राजा निकला है। इसी तरह इन अध्यवसान आदि अन्य भावों को परमागममें ये जीव हैं ऐसा व्यवहार नयसे कहा है निश्चय से विचारा जाय तो उन भावों में जीव तो एक ही है।

[४६]

अरसमरुवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥

हे भव्य तू जीवको ऐसा जान कि वह रसरहित है, रूपरहित है, गंधरहित है, इंद्रियोंके गोचर नहीं हैं, जिसके चेतना गुण है, शब्द-रहित है, किसी चिन्हकर जिसका ग्रहण नहीं होता, जिसका आकार कुछ कहनेमें नहीं आता—ऐसा जीव जानना।

[५०]

[५१]

[५२]

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।
णवि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ॥
जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥

[५०]

[५१]

[५२]

जीवमें रूप नहीं है, गंधभी नहीं है, रसभी नहीं है और स्पर्श भी नहीं है, रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, संस्थान भी नहीं है, संहनन भी नहीं है, तथा जीवमें राग भी नहीं है, द्वेष भी नहीं है, मोह भी नहीं विद्यमान है, आस्रवभी नहीं हैं, कर्म भी नहीं है, और नोकर्म भी उसके नहीं हैं, जीव के वर्ग नहीं हैं, वर्गणा नहीं हैं, कोई स्पर्धक भी नहीं हैं, अध्यात्मस्थान भी नहीं हैं और अनुभाग-स्थान भी नहीं हैं।

[५३]

[५४]

[५५]

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥

[५३]

[५४]

[५५]

जीवके कोई योगस्थान भी नहीं हैं, अथवा वंधस्थान भी नहीं हैं और उदयस्थान भी नहीं हैं, कोई मार्गणा स्थान भी नहीं हैं, जीव के स्थिति बंध स्थान भी नहीं हैं अथवा संक्लेशस्थान भी नहीं हैं, विशुद्धि स्थान भी नहीं हैं, अथवा संयमलब्धि स्थान भी नहीं हैं और जीवके जीवस्थान भी नहीं हैं, अथवा गुणस्थान भी नहीं हैं क्योंकि ये सभी पुद्गल द्रव्यके परिणाम हैं।

(५६)

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया ।
गुणठाणंताभावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥

ये वर्णआदि गुणस्थानपर्यंत भाव कहे गये हैं वे व्यवहार नयसे तो जीवके ही होते हैं, इसलिये सूत्रमें कहे हैं, परंतु निश्चयनयके मतसे इनमेंसे कोई भी जीवके नहीं है।

(५७)

एएहि य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो ।
ण य हुंति तस्स ताणि दु उवओग गुणाधिगो जम्हा ॥

इन वर्णादिक भावोंके साथ जीवका संबंध जल और दूधके एक क्षेत्रावगाहरूप संबंधसरीखा जानना और वे उस जीवके नहीं हैं इसकारण जीव इनसे उपयोग गुणकर अधिक है। इस उपयोग गुणकर जुदा जाना जाता है।

(५८)

(५९)

(६०)

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥
तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ॥
गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥

(५८)

(५९)

(६०)

जैसे मार्गमें चलतेहुएको लुटा हुआ देखकर व्यवहारी जन कहते हैं कि यह मार्ग लूटता है वहां परमार्थसे विचारा जाय तो कोई मार्ग नहीं लूटता, जातेहुए लोक ही लूटते हैं उसीतरह जीवमें कर्मोंका और नोकर्मोंका वर्ण देखकर जीवका यह वर्ण है ऐसा जिनदेवने व्यवहारसे कहा है इसीतरह गंध रस स्पर्श रूप देह संस्थान आदिक जो सब हैं वे व्यवहारसे हैं ऐसा निश्चयनयके देखनेवाले कहते हैं।

(६१)

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी ।
संसारपमुकाणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥

वर्ण आदिक हैं वे संसारमें तिष्ठते हुए जीवोंके उस संसारमें होते हैं, संसारसे छूटे हुए (मुक्त हुए) जीवोंके निश्चयकर वर्णादिक कोईभी नहीं हैं। इसलिये तादात्म्यसंबंध भी नहीं है।

(६२)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावात्ति मण्णसे जदि हि ।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥

(वर्णादिकके साथ जीवका तादात्म्य माननेवालेको कहते हैं कि हे मिथ्याअभिप्रायवाले!) जो तू ऐसा मानेगा कि ये वर्णादिक भाव सभी जीव हैं, तो तेरे मतमें जीव और अजीवका कुछ भेद नहीं रहेगा।

(६३)

(६४)

जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी ।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥

एवं पुग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी ।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥

अथवा संसारमें तिष्ठते हुए जीवोंके तेरे मतमें वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप हैं तो इसीकारण संसारमें स्थित जीव रूपीपनेको प्राप्त होगये। ऐसा होनेपर पुद्गलद्रव्य ही जीव सिद्ध हुआ पुद्गलके लक्षणके समान जीवका लक्षण होनेसे हे मूढबुद्धि निर्वाणको प्राप्तहुआ पुद्गल ही जीवपनेको प्राप्त हुआ।

(६५)

(६६)

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा ।
वादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥

एदेहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणाउ करणभूदाहिं ।
पयडीहिं पुग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ॥

एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीव तथा बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त ये जीव हैं वे नामकर्मकी प्रकृतियां हैं इन प्रकृतियोंकर ही करणस्वरूप होकर जीवसमास रचेगये हैं उन पुद्गलमय प्रकृतियोंसे रचेहुएको जीव कैसे कह सकते हैं ।

(६७)

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा वादरा य जे चेव ।
देहस्स जीवसएणा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥

जो पर्याप्त अपर्याप्त, और जो सूक्ष्म बादर आदि जितनी देहकी जीवसंज्ञा कहीं हैं वह सभी सूत्रमें व्यवहारनयकर कहीं हैं ।

(६८)

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ॥

जो ये गुणस्थान हैं वे मोहकर्मके उदयसे होते हैं ऐसे सर्वज्ञके आगममें वर्णन कियेगये हैं वे जीव कैसे हो सकते हैं ? नहीं होसकते क्योंकि जो हमेशा अचेतन कहे हैं ।

पहला जीवाजीवाधिकार पूर्ण हुआ ।

अथ कर्तृकर्माधिकारः

(६९)

(७०)

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्णंपि ।
अण्णाणी तावदु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥

कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदी ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं ॥

यह जीव जबतक आत्मा और आस्रव इन दोनोंके भिन्न लक्षण नहीं जानता तबतक वह अज्ञानी हुआ क्रोधादिक आस्रवोंमें प्रवर्तता है। क्रोधादिकोंमें वर्तते हुए उसके कर्मोंका संचय होता है इसप्रकार जीवके कर्मोंका बंध सर्वज्ञदेवोंने निश्चयसे कहा है।

(७१)

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से॥

जिस समय इस जीवको अपना और आस्रवोंका भिन्नलक्षण मालूम होजाता है उसीसमय उसके बंध नहीं होता।

(७२)

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो॥

आस्रवोंका अशुचिपना और विपरीतपना तथा ये दुःखके कारण हैं ऐसा जानकर यह जीव उनसे निवृत्ति करता है।

(७३)

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि ॥

(ज्ञानी विचारता है कि) मैं निश्चयसे एक हूं, शुद्ध हूं, ममता-रहित हूं, ज्ञानदर्शनकर पूर्ण हूं, ऐसे स्वभावमें तिष्ठता उसी चैतन्य अनुभवमें लीन हुआ इन क्रोधादिक सब आस्रवोंको क्षय कर देता हूं ।

(७४)

जीवणिबद्धा एए अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफलात्ति य णादूण णिवत्तए तेहिं ॥

ये आस्रव हैं, वे जीवके साथ निबद्ध हैं, अध्रुव हैं, और अनित्य हैं तथा अशरण हैं, दुःखरूप हैं, और जिनका फल दुःख ही है ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष उनसे निवृत्ति करता है ।

(७५)

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥

जो जीव इस कर्मके परिणामको उसीतरह नोकर्मके परिणामको नहीं करता परंतु जानता है वह ज्ञानी है।

(७६)

णवि परिणमइ ण गिह्णइ उप्पज्जइ ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥

ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्गलद्रव्यके पर्यायरूप कर्मोंको जानता है तौभी निश्चयकर परद्रव्यके पर्यायोंमें उन स्वरूप नहीं परिणमता ग्रहण भी नहीं करता और उनमें उत्पन्न भी नहीं होता ।

(७७)

णवि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥

ज्ञानी अपने परिणामोंको अनेक प्रकार जानता हुआ भी निश्चयकर परद्रव्यके पर्यायमें न तो परिणता है न उसको ग्रहण करता है और न उपजता है इसलिये उसके साथ कर्ता कर्मभाव नहीं है ।

(७८)

णवि परिणमदि ण गिह्लदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंतं ॥

ज्ञानी अनंत पुद्गल कर्मोंके फलोंको जानता हुआ प्रवर्तता है तौ भी निश्चयसे परद्रव्यके पर्यायमें नहीं परिणमता है उसमें कुछ ग्रहण नहीं करता तथा उसमें उपजता भी नहीं है। इसप्रकार उसमें इसके कर्तृकर्मभाव नहीं है।

(७९)

णवि परिणमदि ण गिह्लदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥

पुद्गल द्रव्य भी परद्रव्यके पर्यायमें उसतरह नहीं परिणमता है, उसको ग्रहण भी नहीं करता और न उत्पन्न होता है क्योंकि अपने भावोंसे ही परिणमता है।

(८०)

(८१)

(८२)

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥

णवि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोह्णंपि ॥

एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥

(८०)

(८१)

(८२)

पुद्गल जिसको जीवके परिणाम निमित्त हैं ऐसे कर्मपनेरूप परिणमते हैं उसीतरह जीव भी जिसको पुद्गलकर्मनिमित्त है ऐसे कर्मपनेरूप परिणमता है। जीव कर्मके गुणोंको नहीं करता उसीतरह कर्म जीवके गुणोंको नहीं करता। किंतु इन दोनोंके परस्पर निमित्तमात्र से परिणाम जानो, इसी कारणसे अपने भावोंकर आत्मा कर्ता कहा जाता है, परंतु पुद्गलकर्म कर किये गये सब भावोंका कर्ता नहीं है।

(८३)

णिच्छयणयस्य एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥

निश्चयनयका यह मत है कि आत्मा अपनेको ही करता है फिर वह आत्मा अपनेको ही भोगता है ऐसा हे शिष्य ! तू जान ।

(८४)

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं ।
तं चेवय वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥

व्यवहार नयका यह मत है कि आत्मा अनेक प्रकार पुद्गल-कर्मोंको करता है और उसी अनेक प्रकार पुद्गलकर्मको भोगता है ।

(८५)

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा ।
दो किरियावादित्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥

जो आत्मा इस पुद्गलकर्मको करे और उसीको भोगे तो वह आत्मा दो क्रियासे अभिन्न ठहरे ऐसा प्रसंग आता है सो यह जिनदेवका मत नहीं है ।

(८६)

जह्मा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति ॥

जिसकारण आत्माके भावको और पुद्गलके भावको दोनोंहीको आत्मा करता है ऐसा कहते हैं इसी कारण दो क्रियाओंको एकके ही कहनेवाले मिथ्यादृष्टि ही हैं ।

(८७)

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोधादिया इमे भावा ॥

जो मिथ्यात्व कहा गया था वह दो प्रकार है एक जीवमिथ्यात्व एक अजीवमिथ्यात्व और उसीतरह अज्ञान, अविरति, योग, मोह, और क्रोधादि कषाय ये सभी भाव जीव अजीवके भेदकर दो दो प्रकार हैं ।

(८८)

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमजीवं ।
उवओगो अण्णाणं अविरइ मिच्छं च जीवो दु ॥

जो मिथ्यात्व योग अविरति अज्ञान ये अजीव हैं वे तो पुद्गलकर्म हैं और जो अज्ञान अविरति मिथ्यात्व ये जीव हैं वे उपयोग हैं ।

(८९)

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णायव्वो ॥

अनादिसे मोहयुक्त होनेसे उपयोगके अनादिसे लेकर तीन परिणाम हैं वे मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव ये तीन जानने ।

(९०)

एएसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥

मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति इन तीनोंका अनादिसे निमित्त होनेपर आत्माका उपयोग शुद्ध नयकर एक शुद्ध निरंजन है तौभी मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इस तरह तीन प्रकार परिणामवाला है । वह आत्मा इन तीनोंमेंसे जिस भावको स्वयं करता है उसीका वह कर्ता होता है ।

(६१)

जं कुणइ भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं ॥

आत्मा जिस भावको करता है उस भावका कर्ता आप होता है उसको कर्ता होनेपर पुद्गलद्रव्य अपने आप कर्मपनेरूप परिणामता है ।

(९२)

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥

जीव आप अज्ञानी हुआ परको अपने करता है और अपने को परके करता है इसतरह वह कर्मोंका कर्ता होता है।

(९३)

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥

जो जीव अपनको पर नहीं करता और परको अपना भी नहीं करता वह जीव ज्ञानमय है कर्मोंका करनेवाला नहीं है।

(६४)

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेइ कोहोहं ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होइ सो अत्तभावस्स ॥

यह तीन प्रकारका उपयोग अपनेमें विकल्प करता है कि मैं क्रोध स्वरूप हूं उस अपने उपयोगभावका वह कर्ता होता है ।

(६५)

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्माई ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥

यह उपयोग तीन प्रकारका होनेसे धर्मआदिक द्रव्यरूप आत्मविकल्प करता है, उनको अपने जानता है, वह उस उपयोगरूप अपने भावका कर्ता होता है ।

(९६)

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाणं अवि य परं करेइ अण्णाणभावेण ॥

ऐसे पूर्वकथितरीतिसे अज्ञानी अज्ञानभावकर परद्रव्योंको अपनी करता है और अपनेको परका करता है ।

(९७)

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो ।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं ॥

इस पूर्वकथित कारणसे निश्चयके जाननेवाले ज्ञानियोंने वह आत्मा कर्ता कहा है इसतरह जो जानता है वह ज्ञानी हुआ सब कर्तापनेको छोड़ देता है ।

(९८)

ववहारेण दु एवं करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥

आत्मा व्यवहारकर घट पट रथ इन वस्तुओंको करता है और इंद्रियादिक करणपदार्थोंको करता है और ज्ञानावरणादिक तथा क्रोधादिक द्रव्यकर्म भावकर्मोंको करता है तथा इस लोकमें अनेकप्रकार के शरीरादि नोकर्मोंको करता है ।

(९९)

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥

जो वह आत्मा परद्रव्योंको करे तो वह आत्मा उन परद्रव्योंसे नियमकर तत्मय होजाय परंतु तन्मय नहीं होता इसीकारण वह उनका कर्ता नहीं है ।

(१००)

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥

जीव घड़ेको नहीं करता और पटको भी नहीं करता शेष द्रव्योंको भी नहीं करता जीवके योग और उपयोग ये दोनों घटादिकके उत्पन्न करनेके निमित्त हैं, उन दोनों योगउपयोगोंका यह जीव कर्ता है ।

(१०१)

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥

जो ज्ञानावरणादिक पुद्गलद्रव्योंके परिणाम हैं उनको आत्मा नहीं करता, जो जानता है वह ज्ञानी है ।

(१०२)

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥

आत्मा जिस शुभ अशुभ अपने भावको करता है वह उस भावका कर्ता निश्चयसे होता है वह भाव उसका कर्म होता है वही आत्मा उस भावरूप कर्मका भोक्ता होता है ।

(१०३)

जो जह्मि गुणो दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥

जो द्रव्य जिस अपने द्रव्यस्वभावमें तथा अपने जिस गुणमें वर्तता है वह अन्य द्रव्यमें तथा गुणमें संक्रमणरूप नहीं होता पलटकर अन्यमें नहीं मिल जाता, वह अन्यमें नहीं मिलता हुआ, उस अन्यद्रव्य को कैसे परिणमा सकता है कभी नहीं परिणमा सकता ।

(१०४)

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि ।
तं उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता ॥

आत्मा पुद्गलमयकर्ममें द्रव्यको तथा गुणको नहीं करता उसमें उन दोनोंको नहीं करता हुआ उसका वह कर्ता कैसे होसकता है ।

(१०५)

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णादि उवयारमत्तेण ॥

जीवको निमित्तरूप होनेसे कर्मबंधका परिणाम होता है उसे देखकर जीवने कर्म किये हैं यह उपचारमात्रसे कहा जाता है।

(१०६)

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कदंति जंपदे लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥

जैसे योधाओंने युद्ध किया उस जगह लोक ऐसा कहते हैं कि राजाने युद्ध किया सो यह व्यवहारसे कहना है उसीतरह ज्ञानावरणादि कर्म जीवने किये हैं ऐसा कहना व्यवहारसे है।

(१०७)

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥

आत्मा पुद्गलद्रव्यको उत्पन्न करता है और करता है, बांधता है, परिणमाता है, तथा ग्रहण करता है ऐसा व्यवहारनयका वचन है।

(१०८)

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥

जैसे प्रजामें राजा दोष और गुणोंका उत्पन्न करनेवाला है ऐसा व्यवहारसे कहा है, उसीतरह जीवको भी व्यवहारसे पुद्गलद्रव्यमें द्रव्यगुणका उत्पादक कहा गया है।

(१०९)

(११०)

(१११)

(११२)

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥

तेसिं पुणोवि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो ।
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥

एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा ।
ते जदि करंति कम्मं णवि तेसिं वेदगो आदा ॥

गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा ।
तह्मा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥

(१०९)

(११०)

(१११)

(११२)

प्रत्यय अर्थात् कर्मबंधके कारण जो आस्रव वे सामान्यसे चार बंधके कर्ता कहे हैं वे मिथ्यात्व अविरमण और कषाय योग जानने और उनका फिर यह भेद तेरह भेदरूप कहा गया है वह मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर संयोग केवली तक है, वे तेरह गुणस्थान जानने। ये निश्चय दृष्टिकर अचेतन हैं क्योंकि पुद्गलकर्मके उदयसे हुए हैं, जो वे कर्मको करते हैं, उनका भोक्ता आत्मा नहीं होता, ये प्रत्यय गुण नाम वाले हैं, क्योंकि ये कर्मको करते हैं, इसकारण जीव तो कर्मका कर्ता नहीं है और ये गुण ही कर्मोंको करते हैं।

(११३)

(११४)

(११५)

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो ।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहा[1]जीवो ।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥

अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा ।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥

(११३)

(११४)

(११५)

जैसे जीवके एकरूप उपयोग है उसीतरह जो क्रोध भी एकरूप होजाय तो इसतरह जीव और अजीवके एकपना प्राप्त हुआ, ऐसा होनेसे इस लोकमें जो जीव है, वही नियमसे वैसा ही अजीव हुआ, ऐसे दोनोंके एकत्व होनेमें यह दोष प्राप्त हुआ। इसीतरह प्रत्यय नोकर्म और कर्म इनमें भी यही दोष जानना। अथवा इस दोषके भयसे तेरे मतमें क्रोध अन्य है और उपयोग स्वरूप आत्मा अन्य है, और जैसे क्रोध है उसीतरह प्रत्यय कर्म और नोकर्म ये भी आत्मासे अन्य ही हैं।

(११६)

(११७)

(११८)

(११९)

(१२०)

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणामदि कम्मभावेण ।
जइ पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥

जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण ।
ते सयमपरिणमंते कहं तु परिणामयदि चेदा ॥

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं ।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥

णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं ।
तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥

(११६)

(११७)

(११८)

(११९)

(१२०)

पुद्गलद्रव्य जीवमें आप न तो बंधा है और न कर्मभावसे स्वयं परिणमता है, जो ऐसा मानो तो यह पुद्गलद्रव्य अपरिणामी होजायगा; अथवा कार्माणवर्गणा आप कर्मभावसे नहीं परिणमती ऐसा मानिये तो संसारका अभाव ठहरेगा, अथवा सांख्यमतका प्रसंग आयेगा। जीव ही पुद्गलद्रव्योंको कर्मभावोंसे परिणमाता है ऐसा माना जाय तो वे पुद्गलद्रव्य आप ही नहीं परिणमते उनको यह चेतन जीव कैसे परिणमा सकता है यह प्रश्न होसकता है अथवा पुद्गलद्रव्य आप ही कर्मभावसे परिणमता है ऐसा माना जाय तो जीव कर्म भावकर कर्मरूप पुद्गलको परिणमाता है, ऐसा कहना झूठ होजाय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल द्रव्य कर्मरूप परिणत हुआ, नियमसे ही कर्मरूप होता है ऐसा होनेपर वह पुद्गल द्रव्य ही ज्ञानावरणादिरूप परिणत कर्म जानो।

(१२१)

(१२२)

(१२३)

(१२४)

(१२५)

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं ।
जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदी ॥

अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहि भावेहिं ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥

पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं ।
तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो ॥

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी ।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥

कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा ।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ॥

(१२१)

(१२२)

(१२३)

(१२४)

(१२५)

सांख्यमतवाले शिष्यको, आचार्य कहते हैं कि हे भाई तेरी बुद्धिमें यदि यह जीव कर्मोंमें आप तो बंधा नहीं है और क्रोधादि भावोंकर आप परिणमता भी नहीं है ऐसा है तो अपरिणामी वह अपरिणामी होगा ऐसा होनेपर क्रोधादि भावोंकर जीवको आप नहीं परिणत होनेपर संसारका अभाव हो जायगा, और सांख्यमतका प्रसंग आवेगा। यदि कहेगा कि पुद्गलकर्म क्रोध है वह जीवको क्रोध भावरूप परिणमाता है तो आप स्वयं न परिणमते हुए जीवको क्रोध कैसे परिणमा सकता है ऐसा प्रश्न है। अथवा तेरी ऐसी समझ है कि आत्मा अपने आप यह आत्मा क्रोध भावकर परिणमता है तो क्रोध जीवको क्रोधभावरूप परिणमाता है, ऐसा कहना मिथ्या ठहरता है। इसलिये यह सिद्धांत है कि आत्मा क्रोधसे उपयोग सहित होता है अर्थात् उपयोग क्रोधाकाररूप परिणमता है तब तो क्रोध ही है, मानसे उपयुक्त होता है तब मान ही है, मायाकर उपयुक्त होता है तब माया ही है और लोभकर उपयुक्त होता है तब लोभ ही है।

(१२६)

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ।।

जो आत्मा जिस भावको करता है वह उस भावरूप कर्मका कर्ता होता है । उसजगह ज्ञानीके तो वह भाव ज्ञानमय है और अज्ञानीके अज्ञानमय है ।

(१२७)

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि ।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणादि तह्मा दु कम्माणि ॥

अज्ञानीका अज्ञानमय भाव है, इसकारण अज्ञानी कर्मोंको करता है और ज्ञानीके ज्ञानमयभाव होता है, इसलिये वह ज्ञानी कर्मोंको नहीं करता।

(१२८)

(१२९)

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥

जिसकारण ज्ञानमयभावसे ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है। इसकारण ज्ञानीके निश्चयकर सब भाव ज्ञानमय हैं। और जिसकारण अज्ञानमयभावसे अज्ञानमय ही भाव होता है, इसकारण अज्ञानीके अज्ञानमय ही भाव उतपन्न होते हैं।

(१३०)

(१३१)

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादयो भावा ।
अयमययया भावादो जह जायंते तु कडयादी ॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥

जैसे सुवर्णमयभावसे सुवर्णमय कुंडलादिक भाव होते हैं, और लोहमयभावसे लोहमयी कड़े इत्यादिक भाव होते हैं। उसका दार्ष्टांत। उसीतरह अज्ञानीके अज्ञानमय भावसे अनेक तरहके अज्ञानमय भाव होते हैं, और ज्ञानीके सभी ज्ञानमयभाव होनेसे ज्ञानमयभाव होते हैं।

(१३२)

(१३३)

(१३४)

(१३५)

(१३६)

अण्णाणस्स स उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी ।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥

उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं ।
जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥

तं जाण जोगउदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो ।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु ।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥

(१३२)

(१३३)

(१३४)

(१३५)

(१३६)

जो, जो जीवोंके अन्यथास्वरूपका जानना है वह अज्ञानका उदय है और जो जीवके अतत्त्वका श्रद्धान है वह मिथ्यात्वका उदय है और जो जीवोंके अत्यागभाव है वह असंयमका उदय है और जो जीवोंके मलिन (जानपनेकी स्वच्छतासे रहित) उपयोग है वह कषायक उदय है और जो जीवोंके शुभरूप अथवा अशुभरूप मनवचनकायकी चेष्टाके उत्साहका करने योग्य, अथवा न करने योग्य, व्यापार है उसे योगका उदय जानो। इनको हेतुभूत होनेपर जो कार्मोणवर्गणारूप आकर प्राप्त हुआ, ज्ञानावरण आदि भावोंकर आठ प्रकार परिणमता है वह निश्चयकर जब कार्माणवर्गणारूप आया हुआ जीवमें बंधता है, उस समय उन अज्ञानादिक परिणाम भावोंका कारण जीव होता है।

(१३७)

(१३८)

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी ।
एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावरणा ॥

एकस्स दु परिणामा जायदि जीवस्स रागमादीहिं ।
ता कम्मोदयहेदूहि विणा जीवस्स परिणामो ॥

जो ऐसा मानाजाय कि जीवके परिणाम रागादिक हैं वे निश्चयसे कर्मके साथ होते हैं, तो जीव और कर्म ये दोनों ही रागादि परिणामको प्राप्त हो जायँ। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि इन रागादिकोंसे एक जीवका ही परिणाम उत्पन्न होता है वह कर्मका उदयरूप निमित्त कारणसे जुदा एक जीवका ही परिणाम है।

(१३९)

(१४०)

जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो ।
एवं पुग्गलजीवा हु दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥

एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥

जो जीवके साथ ही पुद्गलद्रव्यका कर्मरूप परिणाम होता है ऐसा माना जाय तो इसतरह पुद्गल और जीव दोनों ही कर्मपनेको प्राप्त हुए ऐसा हुआ। इसलिये जीवभाव निमित्त कारणके विना जुदा ही कर्मका परिणाम है। सो एक पुद्गलद्रव्यका ही कर्मभावकर परिणाम है।

(१४१)

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥

जीवमें कर्म बद्ध है अर्थात् जीवके प्रदेशोंसे बंधा हुआ है, तथा स्पर्शता है ऐसा व्यवहारनयका वचन है और जीवमें अबद्धस्पृष्ट है अर्थात् न बँधता है न स्पर्शता है ऐसा शुद्धनयका वचन है ।

(१४२)

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं ।
पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥

जीवमें कर्म बंधे हुए हैं अथवा नहीं बंधे हुए हैं इसप्रकार तो नयपक्ष जानो और जो पक्षसे दूरवर्ती कहा जाता है, यह समयसार है निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है ।

(१४३)

दोराहवि गयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिवद्धो ।
ण दु णयपक्खं गिराहदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥

जो पुरुष अपने शुद्धात्मासे प्रतिबद्ध है आत्माको जानता है वह दोनों ही नयोंके कथनको केवल जानता ही है परंतु नयपक्षको कुछ भी नहीं ग्रहण करता क्योंकि वह नयके पक्षसे रहित है।

(१४४)

सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥

जो सब नयपक्षोंसे रहित है वही समयसार ऐसा कहा है। यह समयसार ही केवल सम्यग्दर्शन ज्ञान ऐसे नामको पाता है। उसीके नाम हैं वस्तु दो नहीं हैं।

कर्ता कर्म नामा दूसरा अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ पुण्यपापाधिकारः

(१४५)

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥

अशुभ कर्म तो पापस्वभाव है बुरा है और शुभकर्म पुण्य-स्वभाव है अच्छा है ऐसा जगत् जानता है। परंतु परमार्थदृष्टिसे कहते हैं कि जो प्राणीको संसारमें ही प्रवेश करता है वह कर्म शुभ अच्छा कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता।

(१४६)

सौवरिणयह्मि णियलं बंधदि कालायसं च जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥

जैसे लोहेकी बेड़ी पुरुषको बांधती है और सुवर्णकी भी बांधती है उसीतरह शुभ तथा अशुभ किया हुआ कर्म जीवको बांधता ही है।

(१४७)

तह्मा दु कुसीलेहिय रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥

हे मुनिजन हो! इसलिये (पूर्वकथित शुभअशुभ कर्म हैं वे कुशील हैं निंद्य स्वभाव हैं) उन दोनों कुशीलोंसे प्रीति मत करो अथवा संबंध भी मत करो, क्योंकि कुशीलके संसर्गसे और रागसे अपनी स्वाधीनताका विनाश होता है अपना घात आपसे ही होता है।

(१४८)

(१४९)

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥

एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णाउं ।
वज्जंति परिहरंति य तस्सं सग्गं सहावरया ॥

जैसे कोई पुरुष निंदितस्वभाववाले किसी पुरुषको जानकर उसके साथ संगति और राग करना छोड़ देता है, इसी तरह ज्ञानी जीव कर्म प्रकृतियोंके शील स्वभावको निंदने योग्य खोटा जानकर उससे राग छोड़ देते हैं, और उसकी संगति भी छोड़ देते हैं पश्चात् अपने स्वभाव में लीन होजाते हैं ।

(१५०)

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥

रागी जीव तो कर्मोंको बांधता है तथा वैराग्यको प्राप्त हुआ जीव कर्मसे छूट जाता है यह जिन भगवानका उपदेश है, इस कारण भो भव्यजीवो तुम कर्मोंमें प्रीति मतकरो रागी मत होओ ।

(१५१)

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥

निश्चयकर परमार्थरूप जीवनामा पदार्थका स्वरूप यह है कि जो शुद्ध है केवली है मुनि है ज्ञानी है ये जिसके नाम हैं, उस स्वभावमें तिष्ठे हुए मुनि मोक्षको प्राप्त होते हैं ।

(१५२)

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेई ।
तं सव्वं वालतवं वालवदं विंति सव्वण्हू ॥

जो ज्ञानस्वरूप आत्मामें तो स्थिर नहीं है और तप करता है तथा व्रतोंको धारण करता है उस सब तप व्रतको सर्वज्ञ देव अज्ञानतप अज्ञानव्रत कहते हैं।

(१५३)

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठवाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥

जो कोई व्रत और नियमोंको धारणकरते हैं, उसीतरह शील और तपको करते हैं परंतु परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा से बाह्य हैं अर्थात् उसके स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान जिनके नहीं है, वे मोक्षको नहीं पाते।

(१५४)

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेउं अजाणंता ॥

जो जीव परमार्थसे बाह्य हैं परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्माको नहीं अनुभवते वे जीव अज्ञानसे पुण्य अच्छामानके चाहते हैं, वह पुण्य संसारके गमनको कारण है तौ भी, वे जीव मोक्षका कारण ज्ञानस्वरूप आत्माको नहीं जानते। पुण्यको ही मोक्षका कारण मानते हैं।

(१५५)

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं ।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥

जीवादिक पदार्थोंका श्रद्धान तो सम्यक्त्व है और उन जीवादि पदार्थोंका अधिगम वह ज्ञान है तथा रागादिकका त्याग वह चारित्र है यही मोक्षका मार्ग है।

(१५६)

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति ।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥

पंडित जन निश्चयनयके विषयको छोड़ व्यवहारकर प्रवर्तते हैं परंतु परमार्थभूत आत्मस्वरूपको आश्रित यतीश्वरोंके ही कर्मका नाश कहा गया है। व्यवहारमें प्रवर्तनेवालेका कर्मक्षय नहीं होता।

(१५७)

(१५८)

(१५९)

वत्थस्य सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं ॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो ।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णायव्वं ॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदी मलमेलणासत्तो ।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥

(१५७)

(१५८)

(१५९)

जैसे वस्त्रका सफेदपना मलके मिलनेकर लिप्त हुआ नष्ट हो जाता है तिरोभूत होता है उसी तरह मिथ्यात्वमलसे व्याप्त हुआ आत्माका सम्यक्त्वगुण निश्चयकर आच्छादित होरहा है ऐसा जानना चाहिये ।। जैसे वस्त्रका सफेदपन मलके मेलसे लिप्त हुआ नष्ट हो जाता है उसी तरह अज्ञानमलकर व्याप्त हुआ आत्माका ज्ञानभाव आच्छादित होता है ऐसा जानना चाहिये ।। तथा जैसे कपड़ेका सफेदपन मलके मिलनेसे व्याप्त हुआ नष्ट हो जाता है उसी तरह कषायमलकर व्याप्त हुआ आत्माका चारित्र भाव भी आच्छादित हो जाता है ऐसा जानना चाहिये ।

(१६०)

(१६१)

(१६२)

(१६३)

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणवच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो ॥

णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्वो ॥

चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो ॥

(१६०)

(१६१)

(१६२)

(१६३)

वह आत्मा स्वभावसे सबका जाननेवाला और देखनेवाला है तौभी अपने कर्मरूपीरजसे आच्छादित (व्याप्त) हुआ संसारको प्राप्त होता हुआ सब तरहसे सब वस्तुको नहीं जानता। सम्यक्त्वका रोकनेवाला मिथ्यात्वकर्म है ऐसा जिनवरदेवने कहा है उस मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है ऐसा जानना चाहिये। ज्ञानका रोकनेवाला अज्ञान है ऐसा जिनवरने कहा है, उसके उदयसे यह जीव अज्ञानी होता है ऐसा जानना चाहिये। चारित्रका प्रतिबंधक कषाय है ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है, उसके उदयसे यह जीव अचारित्री हो जाता है ऐसा जानना चाहिये।

तीसरा **पुण्यपाप** नामा अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ आस्रवाधिकारः

(१६४)

(१६५)

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिंपि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥

मिथ्यात्व अविरति और कषाय योग ये चार आस्रवके भेद चेतनाके और जड़–पुद्गलके विकार ऐसे दो दो भेद जुदे २ हैं। उनमेंसे चेतनके विकार हैं वे जीवमें बहुत भेद लिये हुए हैं वे उस जीवके ही अभेदरूप परिणाम हैं और जो मिथ्यात्व आदि पुद्गलके विकार हैं वे तो ज्ञानावरण आदि कर्मोंके बंधनेके कारण है और उन मिथ्यात्व आदि भावोंको भी रागद्वेष आदि भावोंका करनेवाला जीव कारण होताहै।

(१६६)

णत्थि दु आसववंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ॥

सम्यग्दृष्टिके आस्रव बंध नहीं है और आस्रवका निरोध है और जो पहलेके बांधे हुए सत्तामें मौजूद हैं उनको आगामी नहीं बांधता हुआ वह जानता ही है ।

(१६७)

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो ।
रायादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरिं ॥

जो रागादिकर युक्त भाव जीवकर किया गया हो वही नवीनकर्मका बंधकरनेवाला कहा गया है और जो रागादिक भावोंसे रहित है वह बंध करनेवाला नहीं है केवल जाननेवाला ही है।

(१६८)

पक्के फलह्मि पडिए जह ण फलं वज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥

जैसे वृक्ष तथा वेलिका फल पककर गिरजाय वह फिर गुच्छे से नहीं बंधता उसीतरह जीवमें पुद्गलकर्मभावरूप पककर झड़जाय अर्थात् निर्जरा हो गई हो वह कर्म फिर उदय नहीं होता।

(१६९)

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स ॥

उस पूर्वोक्त ज्ञानीके पहले अज्ञानअवस्थामें बंधेहुए सभी कर्म जीवके रागादिभावोंके हुए विना पृथ्वीके पिंडसमान हैं जैसे मट्टीआदि अन्य पुद्गलस्कंध हैं उसीतरह वे भी हैं और वे कार्मणशरीरके साथ बंधेहुए हैं।

(१७०)

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समये समये जह्मा तेण अवंधोत्ति णाणी दु ॥

जिसकारण चार प्रकारके जो पूर्व कहे गये मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग आस्रव हैं वे दर्शनज्ञानगुणोंकर समय समय अनेक भेद लिये कर्मोंको बांधते हैं इसकारण ज्ञानी तो अवंधरूप ही है।

(१७१)

जह्मा दु जहरणादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥

जिस कारण ज्ञानगुण फिर भी जघन्य ज्ञानगुणसे अन्यपने-रूप परिणमता है, इसीकारण वह ज्ञानगुण कर्मका बंध करनेवाला कहागया है।

(१७२)

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥

दर्शनज्ञानचारित्र जिसकारण जघन्य भावकर परिणमते हैं इस कारणसे ज्ञानी अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मोंसे बंधता है।

(१७३)

(१७४)

(१७५)

(१७६)

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥

संती दु णिरुवभोज्जा बाला इच्छी जहेव पुरुसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इच्छी जह णरस्स ॥

होदूण णिरवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥ चतुष्कं

(१७३)

(१७४)

१७५)

(१७६)

सम्यग्दृष्टिके सभी पूर्व अज्ञानअवस्थामें बांधे मिथ्यात्वादि आस्रव सत्तारूप मौजूद हैं वे उपयोगके प्रयोग करनेरूप जैसे हो वैसे उसके अनुसार कर्म भावकर आगामी बंधको प्राप्त होते हैं और जो पूर्वबंधे प्रत्यय उदयविना आये भोगने योग्यपनेसे रहित होकर तिष्ठ रहे हैं वे फिर आगामी उसतरह बंधते हैं जैसे ज्ञानावरणादिभावोंकर सात आठ प्रकार फिर भोगने योग्य हो जायँ, और वे पूर्वबंधे प्रत्यय सत्तामें ऐसे हैं जैसे इसलोकमें पुरुषके बालिका स्त्री भोगने योग्य नहीं होती, और वेही भोगने योग्य होते हैं तब पुरुषको बांधते हैं जैसे वही बाला स्त्री जवान होजाय तब पुरुषको बांधलेती है अर्थात् पुरुष उसके आधीन हो जाता है यही बंधना है। इसीकारणसे सम्यग्दृष्टि अबंधक कहा गया है क्योंकि आस्रवभाव जो राग द्वेष मोह उनका अभाव होनेसे मिथ्यात्वआदि प्रत्यय सत्तामें होनेपर भी आगामी कर्मबंधके करनेवाले नहीं कहे गये हैं।

(१७७)

(१७८)

रागो दोषो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥

हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥

राग द्वेष और मोह ये आस्रव सम्यग्दृष्टिके नहीं हैं इसलिये आस्रवभावके विना द्रव्यप्रत्यय कर्मबंधको कारण नहीं हैं मिथ्यात्वआदि चार प्रकारका हेतु आठ प्रकारके कर्मके बंधनेका कारण कहागया है और उन चार प्रकारके हेतुओंको भी जीवके रागादिक भाव कारण हैं सो सम्यग्दृष्टिके उन रागादिक भावोंका अभाव होनेसे कर्मबंध नहीं है।

(१७९)

(१८०)

जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेयविहं ।
मंसवसारुहिरादी भावे उयरग्गिसंजुत्तो ॥

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
वज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥

जैसे पुरुषकर ग्रहणकिया गया आहार वह उदराग्निकर युक्त हुआ अनेकप्रकार मांस रस रुधिर आदि भावोंरूप परिणमता है उसीतरह ज्ञानीके पूर्व बंधे जो द्रव्यास्रव वे बहुतभेदोंको लिये कर्मोंको बांधते हैं। वे जीव शुद्धनयसे छूट गये हैं अर्थात् रागादि अवस्थाको प्राप्त हुए हैं।

आस्रव नामा चौथा अधिकार पूर्ण हुआ ।

अथ संवराधिकारः

(१८१)

(१८२)

(१८३)

उवओए उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥

अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥

एयं तु अविवरीदं णाणं जइया उ होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥

(१८१)

(१८२)

(१८३)

उपयोगमें उपयोग है क्रोध आदिकोंमें कोई उपयोग नहीं है और निश्चयकर क्रोधमें ही क्रोध है उपयोगमें निश्चयकर क्रोध नहीं है, आठ प्रकारके ज्ञानावरण आदि कर्मों में तथा शरीर आदि नोकर्मोंमें भी उपयोग नहीं है और उपयोगमें कर्म और नोकर्म भी नहीं है, जिसकाल-में ऐसा सत्यार्थ ज्ञान जीवके होजाता है उसकालमें केवल उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा उपयोगके विना अन्य कुछ भी भाव नहीं करता।

(१८४)

(१८५)

जह कणय मग्गितवियंपि कणयहावं ण तं परिच्चयइ ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी उ णाणित्तं ॥

एवं जाणइ णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं ।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥

जैंसे सुवर्ण अग्निसे तप्त हुआ भी अपने सुवर्णपनेको नहीं छोड़ता, उसीतरह ज्ञानी कर्मोंके उदयसे तप्तायमान हुआ भी ज्ञानीपने स्वभावको नहीं छोड़ता, इसतरह ज्ञानी जानता है। और अज्ञानी रागको ही आत्मा जानता है, क्योंकि वह अज्ञानी अज्ञानरूप अंधकारसे व्याप्त है इसलिये आत्माके स्वभावको नहीं जानता हुआ प्रवर्तता है।

(१८६)

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥

शुद्ध आत्माको जानता हुआ जीव शुद्ध ही आत्माको पाता है और अशुद्ध आत्माको जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्माको ही पाता है ।

(१८७)

(१८८)

(१८९)

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु ।
दंसणणाणह्मि ठिदो इच्छाविरओ य अण्णह्मि ॥

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥

(१८७)

(१८८)

(१८९)

जो जीव अपने आत्माको अपनेकर दो पुण्यपापरूप शुभाशुभयोगोंसे रोकके दर्शनज्ञानमें ठहरा हुआ अन्यवस्तुमें इच्छारहित और सब परिग्रहसे रहित हुआ आत्माकर ही आत्माको ध्याता है तथा कर्म नोकर्मको नहीं ध्याता और आप चेतनारूप होनेसे उस स्वरूप एकपनेको अनुभवता है विचारता है वह जीव दर्शनज्ञानमय हुआ, अन्यमय नहीं होके, आत्माको ध्याता हुआ थोड़े समयमें ही कर्मोंकर रहित आत्माको पाता है।

(१६०)

(१६१)

(१६२)

तेसिं हेऊ भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य ॥

हेउअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो ॥

कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होइ ॥

(१९०)

(१९१)

(१९२)

पूर्वकहे हुए रागद्वेष मोहरूप आस्रवोंके हेतु सर्वज्ञदेवने मिथ्यात्व, अज्ञान; अविरतभाव और योग, ये चार अध्यवसान कहे हैं सो ज्ञानीके इन हेतुओंका अभाव होनेसे नियमसे आस्रवका निरोध होता है और आस्रवभावके विना (न होनेसे) कर्मका भी निरोध होता है और कर्मके अभावसे नोकर्मोंका भी निरोध होता है तथा नोकर्मके निरोध होनेसे संसारका निरोध होता है।

पांचवाँ संवर अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ निर्जराधिकारः

(१६३)

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणं चेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥

सम्यग्दृष्टि जीव जो इंद्रियोंकर चेतन और अन्य अचेतन द्रव्योंका उपभोग करता है—उनको भोगता है वह सब ही निर्जराके निमित्त है।

(१६४)

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं वा ।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि ॥

परद्रव्यको भोगनेसे सुख अथवा दुःख नियमसे होता है उदयमें आये हुए उस सुखदुःखको अनुभवता है भोगता है आस्वादता है फिर वह आस्वाद देकर कर्मद्रव्य झड़ जाता है॥ निर्जरा होने बाद फिर वह कर्म नहीं आता।

(१९५)

जह विसमुवभुञ्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झए णाणी ॥

जैसे वैद्य विषको भोगता हुआ भी मरणको नहीं प्राप्त होता, उसीतरह ज्ञानी पुद्गलकर्मके उदयको भोगता है तौ भी बंधता नहीं है।

(१९६)

जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव ॥

जैसे कोई पुरुष मदिराको विना प्रीतिसे पीताहुआ मतवाला नहीं होता, उसीतरह ज्ञानी भी द्रव्यके उपभोगमें तीव्र रागरहित हुआ कर्मोंसे नहीं बंधता।

(१६७)

सेवंतोवि ण सेवइ असेवमाणोवि सेवगो कोई ।
पगरणचेट्ठा कस्सवि ण य पायरणोत्ति सो होई ॥

कोई तो विषयोंको सेवता हुआ भी नहीं सेवता है ऐसा कहा जाता है, और कोई नहीं सेवता हुआ भी सेवनेवाला कहा जाता है, जैसे किसी पुरुषके किसी कार्यके करनेकी चेष्टा तो है अर्थात् उस प्रकरणकी सब क्रियाओंको करता है तौ भी किसीका कराया हुआ करता है वह कार्यकरनेवाला स्वामी है ऐसा नहीं कहा जाता ।

(१६८)

उदयविवागो विविहो कम्माणं वरिणओ जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥

कर्मोंके उदयका रस जिनेश्वर देवने अनेक तरहका कहा है वे कर्मविपाकसे हुए भाव मेरा स्वभाव नहीं हैं मैं तो एक ज्ञायकस्वभाव-स्वरूप हूं ।

(१९९)

पुग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमिको ॥

सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि यह राग पुद्गलकर्म है उसके विपाकका उदय है जो मेरे अनुभवमें रागरूप प्रीतिरूप आस्वाद होता है सो यह मेरा भाव नहीं है, क्योंकि निश्चयकर मैं तो एक ज्ञायकभाव-स्वरूप हूं ।

(२००)

एवं सम्मद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणयसहावं ।
उदयं कम्मविवागं य मुअदि तच्चं वियाणंतो ॥

इस तरह सम्यग्दृष्टि अपनेको ज्ञायकस्वभाव जानता है और वस्तुके यथार्थस्वरूपको जानता हुआ कर्मके उदयको कर्मका विपाक जान उसे छोड़ता है ऐसी प्रवृत्ति करता है ।

(२०१)

(२०२)

परमाणुमित्तयं पि हु रायादीणं तु विज्जदे जस्स ।
णवि सो जाणदि अप्पा-णयं तु सव्वागमधरोवि ॥

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो ।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥ जुम्मं ।

निश्चयकरके जिस जीवके रागादिकोंका लेशमात्र (अंशमात्र) भी मौजूद है तो वह जीव सब शास्त्रोंको पढा हुआ होनेपर भी आत्माको नहीं जानता और आत्माको नहीं जानता हुआ परको भी नहीं जानता है, इसतरह जो जीव और अजीव दोनों पदार्थोंको भी नहीं जानता, वह सम्यग्दृष्टि कैसे होसकता है? नहीं होसकता।

(२०३)

आदह्मि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिएह तह णियदं ।
थिरमेगमिमं भावं उवलंब्भंतं सहावेण ॥

आत्मामें परनिमित्तसे हुए अपदरूप द्रव्य भावरूप सभी भावोंको छोड़कर निश्चित स्थिर एक स्वभावकर ही ग्रहण होने योग्य इस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यमात्र भावको हे भव्य! तू जैसा है वैसा ग्रहण कर। वही अपना पद है।

(२०४)

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एकमेव पदं ।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये ज्ञानके भेद हैं वे ज्ञान पदको ही प्राप्त हैं सभी एक ज्ञान नामसे कहे जाते हैं सो यह शुद्धनयका विषयस्वरूप ज्ञानसामान्य है इसलिये यही शुद्धनय है जिसको पाकर आत्मा मोक्षपदको प्राप्त होता है।

(२०५)

णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहूवि ण लहंति ।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥

हे भव्य जो तू कर्मका सब तरफसे मोक्ष करना चाहता है तो उस निश्चित ज्ञानको ग्रहणकर । क्योंकि ज्ञानगुणकर रहित बहुत पुरुष बहुत प्रकारके कर्म करते हैं तो भी इस ज्ञानस्वरूप पदको नहीं प्राप्त होते ।

(२०६)

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥

हे भव्य जीव ! तू इस ज्ञानमें सदाकाल रुचिसे लीन हो और इसीमें हमेशा संतुष्ट हो अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है और इसीसे तृप्त हो अन्य कुछ इच्छा नहीं रहे ऐसा अनुभवकर ऐसा करनेसे तेरे उत्तम सुख होगा ।

(२०७)

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो ॥

ऐसा कौन ज्ञानी पंडित है ? जो यह परद्रव्य मेरा द्रव्य है ऐसा कहे, ज्ञानी तो न कहे। कैसा है ज्ञानी पंडित ? अपने आत्माको ही नियमसे अपना परिग्रह जानता हुआ प्रवर्तता है।

(२०८)

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥

ज्ञानी ऐसा जानता है कि जो मेरा परद्रव्य परिग्रह हो तो मैं भी अजीवपनेको प्राप्त हो जाउं, जिसकारण मैं तो ज्ञाता ही हूं इसकारण मेरे कुछ भी परिग्रह नहीं है।

(२०६)

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥

ज्ञानी ऐसा विचारता है कि परद्रव्य छिद जाओ अथवा भिद जाओ अथवा कोई ले जाओ या नष्ट हो जाओ जिसतिसतरहसे चलीजाओ तौभी निश्चयकर मेरा परद्रव्य परिग्रह नहीं है ।

(२१०)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होई ॥

ज्ञानी परिग्रहसे रहित है इसलिये परिग्रहकी इच्छासे रहित है ऐसा कहा है इसीकारण धर्मको नहीं चाहता इसीलिये धर्मका परिग्रह नहीं है वह ज्ञानी धर्मका ज्ञायक ही है।

(२११)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अहम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥

ज्ञानी इच्छारहित है इसलिये परिग्रहरहित कहा है इसीसे अधर्मकी इच्छा नहीं करता, वह ज्ञानी अधर्मका परिग्रह नहीं रखता, इसलिये वह उस अधर्मका ज्ञायक ही है।

(२१२)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥

इच्छारहित हो वही परिग्रह रहित है ऐसा कहा है और ज्ञानी भोजनको नहीं इच्छता इसलिये ज्ञानीके भोजनका परिग्रह नहीं है इसकारण वह ज्ञानी अशनका ज्ञायक ही है।

(२१३)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणीय णिच्छदे पाणं ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥

इच्छारहित है वह परिग्रहरहित कहा गया है और ज्ञानी जल आदि पीनेकी इच्छा नहीं रखता, इसकारण पानका परिग्रह ज्ञानीके नहीं है इसलिये वह ज्ञानी पानका ज्ञायक ही है।

(२१४)

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥

इस प्रकारको आदि लेकर अनेक प्रकारके सब भावोंको ज्ञानी नहीं इच्छता। क्योंकि नियमसे आप ज्ञायक भाव है इसलिये सबमें निरालंब है।

(२१५)

उप्पण्णोदयभोगो विओगबुद्धीए तस्स सो णिच्चं ।
कंखामणागयस्स य उदयस्स ण कुव्वए णाणी ॥

उत्पन्न हुआ वर्तमान कालके उदयका भोग उस ज्ञानीके हमेशा वह वियोगकी बुद्धिकर वर्तता है इसलिये परिग्रह नहीं है और आगामी कालमें होनेवाले उदयकी ज्ञानी वांछा नहीं करता इसलिये परिग्रह नहीं है। तथा अतीतकालका वीत ही चुका सो यह विना कहा सामर्थ्यसे ही जानना कि इसके परिग्रह नहीं है। गयेहुएकी वांछा ज्ञानीके कैसे हो ?

(२१६)

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखइ कयावि ॥

जो अनुभव करनेवाला भाव अर्थात् वेदकभाव और जो अनुभव करने योग्य भाव अर्थात् वेद्यभाव इसतरह वेदक और वेद्य ये दोनों भाव आत्माके होते हैं सो क्रमसे होते हैं एक समयमें नहीं होते। ये दोनों ही समय समयमें विनस जाते हैं। आत्मा दोनों भावोंमें नित्य है इसलिये ज्ञानी आत्मा दोनों भावोंका ज्ञायक (जाननेवाला) ही है इन दोनों भावोंको ज्ञानी कदाचित् भी नहीं चाहता।

(२१७)

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥

बंध और उपभोगके निमित्त जो अध्यवसानके उदय हैं वे संसारविषयक और देहके विषय हैं उनमें ज्ञानीके राग नहीं उपजता।

(२१८)

(२१६)

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥

अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥

ज्ञानी सब द्रव्योंमें रागका छोड़नेवाला है वह कर्मके मध्यमें प्राप्त होरहा है तौभी कर्मरूपी रजसे नहीं लिप्त होता, जैसे कीचड़में पड़ा हुआ सोना, और अज्ञानी सब द्रव्योंमें रागी है इसलिये कर्मके मध्यको प्राप्त हुआ, कर्मरजकर लिप्त होता है जैसे कीचमें पड़ा हुआ लोहा अर्थात् जैसे लोहेके काई लग जाती है वैसे।

(२२०)

(२२१)

(२२२)

(२२३)

भुंजंतस्सवि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्णगो काउं ।।

तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजंतस्सवि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ।।

जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ।।

जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ।।

तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिऊण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ।।

(२२०)

(२२१)

(२२२)

(२२३)

जैसे शंख अनेक प्रकारके सचित्त अचित्त मिश्रित द्रव्योंको भक्षण करता है तौभी उस शंखका सफेदपना काला करनेको नहीं समर्थ होसकते उसीतरह अनेक प्रकारके सचित्त अचित्त मिश्रित द्रव्योंको भोगनेवाले ज्ञानीके ज्ञानके भी अज्ञानपना करनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। और जैसे वही शंख जिससमय अपने उस श्वेत स्वभावको छोड़कर कृष्णभावको प्राप्त होता है; तब सफेदपनको छोड़ देता है उसीतरह ज्ञानी भी निश्चयकर जब अपने उस ज्ञानस्वभावको छोड़कर अज्ञानकर परिणमता है उस समय अज्ञानपनेको प्राप्त होता है।

(२२४)

(२२५)

(२२६)

(२२७)

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवए रायं ।
तो सोवि देदि राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सोवि देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥

जह पुण सो चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं ।
तो सो ण देइ राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवए ण कम्मरयं ।
तो सो ण देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥

(२२४)

(२२५)

(२२६)

(२२७)

जैसे इस लोकमें कोई पुरुष आजीविकाकेलिये राजाको सेवे तो वह राजा भी उसको सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको देता है इसीतरह जीवनामा पुरुष सुखके लिये कर्मरूपी रजको सेवन करता है तो वह कर्म भी उसे सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको देता है और जैसे वही पुरुष आजीविकाकेलिये राजाको नहीं सेवे तो वह राजा भी उसे सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको नहीं देता है इसीतरह सम्यग्दृष्टि विषयोंके लिये कर्मरूपी रजको नहीं सेवता, तो वह कर्म भी उसे सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको नहीं देता।

(२२८)

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥

सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक होते हैं इसीलिये निर्भय हैं क्योंकि सप्तभयकर रहित हैं इसीलिये निःशंक हैं ।

(२२९)

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो आत्मा कर्मबंधके कारण मोहके करनेवाले मिथ्यात्वादि भावरूप चारों पादोंको निःशंक हुआ काटता है वह आत्मा निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये ।

(२३०)

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो आत्मा कर्मोंके फलोंमें तथा सब धर्मोंमें वांछा नहीं करता, वह आत्मा निःकांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना ।

(२३१)

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव सभी वस्तुके धर्मोंमें ग्लानि नहीं करता वह जीव निश्चयकर विचिकित्सा दोषरहित सम्यग्दृष्टि जानना ।

(२३२)

जो हवइ असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव सब भावोंमें मूढ नहीं होता यथार्थ दृष्टि रखता है वह ज्ञानी जीव निश्चयकर अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना ।

(२३३)

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव सिद्धोंकी भक्तिकर सहित हो और अन्य वस्तुके सब धर्मोंका गोपनेवाला हो वह उपगूहनधारी सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये ।

(२३४)

उम्मगं गच्छंतं सगंपि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव उन्मार्ग चलते हुए अपने आत्माको भी मार्गमें स्थापन करता है वह ज्ञानी स्थितिकरणगुण सहित सम्यग्दृष्टि जानना ।

(२३५)

जो कुणदि वच्छलत्तं तियेह साहूण मोक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव मोक्षमार्गमें स्थित आचार्य उपाध्याय साधुपद सहित आत्मामें अथवा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें वात्सल्यभाव करता है वह वत्सल भावकर सहित सम्यग्दृष्टि जानना ।

(२३६)

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव विद्यारूपी रथमें चढा मनरूपी रथके चलनेके मार्गमें भ्रमण करता है वह ज्ञानी जिनेश्वरके ज्ञानकी प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना ।

सप्तमो निर्जराधिकारः समाप्तः

अथ बंधाधिकार:

(२३७)

(२३८)

(२३९)

(२४०)

(२४१)

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुवहुलम्मि ।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेइ सत्थेहिं वायामं ॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु किं पच्चयगो दु रयवंधो ॥

जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयवंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥

एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो वहुविहासु चिट्ठासु ।
रायाई उवओगे कुव्वंतो लिप्पइ रयेण ॥

(२३७)

(२३८)

(२३९)

(२४०)

(२४१)

प्रगटकर कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष अपनी देहमें तैलादि लगाकर बहुत धूलीवाली जगहमें स्थित होकर हथियारोंसे व्यायाम करता है वहां ताड़वृक्ष केलेका वृक्ष तथा वांसके पिंड इत्यादिकोंको छेदता है भेदता है और सचित्त व अचित्त द्रव्योंका उपघात करता है। इस-प्रकार नानाप्रकारके करणोंकर उपघात करनेवाले उस पुरुषके निश्चयसे विचारो कि रजका बंध किसकारणसे हुआ है ? जो उस मनुष्यमें तेल आदिका सचिक्कण भाव है उससे उसके रजका बंध लगता है यह निश्चयसे जानना। शेष कायकी चेष्टाओंसे रजका बंध नहीं है इसप्रकार मिथ्यादृष्टि जीव बहुत प्रकारकी चेष्टाओंमें वर्तमान है वह अपने उप-योगमें रागादि भावोंको करता हुआ कर्मरूप रजकर लिप्त होता है बंधता है।

(२४२)

(२४३)

(२४४)

(२४५)

(२४६)

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते ।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगो ण रयबंधो ॥

जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥

एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥

(२४२)

(२४३)

(२४४)

(२४५)

(२४६)

जैसे फिर वोही मनुष्य तैलादिक सब चिकनी वस्तुको दूर करके बहुत रजवाले स्थानमें शस्त्रोंका अभ्यास करता है, तालवृक्षकी जड़को केलेके वृक्षको तथा वांसके विड़ेको छेदन भेदन करता है और सचित्त अचित्त द्रव्योंका उपघात करता है। वहां उपघातकरनेवाले उसके नानाप्रकारके करणोंकर निश्चयसे जानना कि रजका बंध किस-कारणसे नहीं होता? उस पुरुषके जो चिक्कनता है उससे उसके रजका बंधना निश्चयसे जानना चाहिये, शेष कायकी चेष्टाओंसे रजका बंध नहीं होता। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि बहुत तरहके योगोंमें वर्तमान है वह उपयोगमें रागादिकोंको नहीं करता इसलिये कर्मरजकर नहीं लिप्त होता।

(२४७)

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

जो पुरुष ऐसा मानता है कि मैं पर जीवको मारता हूं और परजीवोंकर मैं माराजाता हूं पर मुझे मारते हैं वह पुरुष मोही है अज्ञानी है और इससे विपरीत ज्ञानी है ऐसा नहीं मानता।

(२४८)

(२४६)

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेसिं ॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं न हरंति तुहं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥

जीवोंके मरण है वह आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा जिनेश्वर देवने कहा है सो हे भाई तू मानता है कि मैं परजीवको मारता हूं यह अज्ञान है क्योंकि उन परजीवोंका आयुकर्म तू नहीं हरता, तो तूने उनका मरण कैसे किया ?। तथा जीवोंका मरण आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा जिनेश्वरदेवने कहा है परंतु हे भाई तू ऐसा मानता है कि मैं परजीवोंकर मारा जाता हूं यह मानना तेरा अज्ञान है क्योंकि परजीव तेरा आयुकर्म नहीं हरते इसलिये उन्होंने तेरा मरण कैसे किया ।

(२५०)

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

जो जीव ऐसा मानता है कि मैं परजीवोंको जीवित करता हूं और परजीव भी मुझे जीवित करते हैं वह मूढ (मोह) है, अज्ञानी है परंतु ज्ञानी इससे विपरीत है ऐसा नहीं मानता इससे उल्टा मानता है

(२५१)

(२५२)

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं ॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं ॥

जीव अपनी आयुके उदयसे जीता है ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं सो हे भाई तू पर जीवको आयुकर्म नहीं देता तो तूने उन परजीवों-का जीवित कैसे किया ? और जीव अपने आयुकर्मके उदयसे जीता है ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं सो हे भाई परजीव तुझे आयुकर्म नहीं देता, तो उन्होंने तेरा जीवन कैसे किया ? ॥

(२५३)

जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

जो जीव ऐसा मानता है कि मैं अपनेकर परजीवोंको दुःखी सुखी करता हूं वह जीव मोही है अज्ञानी है और ज्ञानी इससे उलटा मानता है।

(२५४)

(२५५)

(२५६)

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कया ते ।।

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंदि जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं ।।

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ।।

(२५४)

(२५५)

(२५६)

सब जीव अपने कर्मके उदयसे दुःखी सुखी होते हैं जो ऐसा है तो हे भाई तू उन जीवोंको कर्म तो नहीं देता परंतु तूने वे दुःखी सुखी कैसे किये ? सब जीव अपने कर्मके उदयसे दुःखी सुखी होते हैं जो ऐसे हैं तो हे भाई वे जीव तुझको कर्म तो नहीं देते उन्होंने दुःखी, तू कैसे किया, तथा सभी जीव अपने कर्मके उदयसे दुःखी सुखी जो होते हैं सो हे भाई ऐसा है तो वे जीव कर्मोंको तुझे दे नहीं सकते तो उन्होंने, तू सुखी कैसे किया।

(२५७)

(२५८)

जो मरइ जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥

जो ण मरदि ण य दुहिदो सोवि य कम्मोदयेण चेव खलु ।
तह्मा ण मरिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥

जो मरता है और जो दुःखी होता है वह सब कर्मके उदयकर होता है इसलिये तेरा "मैं मारा मैं दुःखी किया गया" ऐसा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है। तथा जो नहीं मरता और न दुःखी होता, वह भी कर्मके उदयकर ही होता है इसलिये तेरा यह अभिप्राय है "कि मैं मारा नहीं गया और न दुःखी किया" ऐसा भी अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं हैं ? मिथ्या ही है।

(२५६)

एसा दु जा मई दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
एसा दे मूढमई सुहासुहं बंधए कम्मं ॥

हे आत्मन् तेरी जो यह बुद्धि है कि मैं जीवोंको सुखी दुःखी करता हूं, यह तेरी मूढबुद्धि मोहस्वरूप बुद्धि ही शुभअशुभ कर्मोंको बांधती है ।

(२५७)

(२५८)

जो मरइ जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥

जो ण मरदि ण य दुहिदो सोवि य कम्मोदयेण चेव खलु ।
तह्मा ण मरिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥

जो मरता है और जो दुःखी होता है वह सब कर्मके उदयकर होता है इसलिये तेरा "मैं मारा मैं दुःखी किया गया" ऐसा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है। तथा जो नहीं मरता और न दुःखी होता, वह भी कर्मके उदयकर ही होता है इसलिये तेरा यह अभिप्राय है "कि मैं मारा नहीं गया और न दुःखी किया" ऐसा भी अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं हैं ? मिथ्या ही है।

(२५९)

एसा दु जा मई दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
एसा दे मूढमई सुहासुहं बंधए कम्मं ॥

हे आत्मन् तेरी जो यह बुद्धि है कि मैं जीवोंको सुखी दुःखी करता हूं, यह तेरी मूढबुद्धि मोहस्वरूप बुद्धि ही शुभअशुभ कर्मोंको बांधती है ।

(२६०)

(२६१)

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥

मारिमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥

हे आत्मन् तेरा जो यह अभिप्राय है कि मैं जीवोंको दुःखी सुखी करता हूं वह ही अभिप्राय पापका बंधक है तथा पुण्यका बंधक है। अथवा मैं जीवोंको मारता हूं अथवा जिवाता हूं जो ऐसा तेरा अभिप्राय है वह भी पापका बंधक है अथवा पुण्यका बंधक है।

(२६२)

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥

निश्चय नयका यह पक्ष है कि जीवोंको मारो अथवा मत मारो, यह जीवोंके कर्मबंध अध्यवसायकर ही होता है यह ही बंधका संक्षेप है।

(२६३)

(२६४)

एवमलिये अदत्ते अवंभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पावं ॥

तहवि य सच्चे दत्ते वंभे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पुण्णं ॥

पहले हिंसाका अध्यवसाय कहा था उसीतरह असत्य चोरी आदिसे विना दिये परधनका लेना, स्त्रीका संसर्ग, धनधान्यादिक इनमें जो अध्यवसान किया जाता है उससे तो पापका बंध होता है और उसीतरह सत्यमें दिया हुआ लेनेमें ब्रह्मचर्यमें और अपरिग्रहमें जो अध्यवसान किया जाता है उससे पुण्यका बंध होता है ।

(२६५)

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं ।
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥

जीवोंके जो अध्यवसान है वह वस्तुको अवलंबन करके होता है। तथा वस्तुसे बंध नहीं है, अध्यवसानकर ही बंध है।

(२६६)

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढमई णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥

हे भाई तेरी जो ऐसी मूढबुद्धि है कि मैं जीवोंको दुःखी सुखी करता हूं बंधाता हूं और छुड़ाता हूं वह मोहस्वरूप बुद्धि निरर्थक है जिसका विषय सत्यार्थ नहीं है इसलिये निश्चयकर मिथ्या है।

(२६७)

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा वज्झंति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करोसि तुमं ॥

हे भाई जो जीव अध्यवसानके निमित्तसे कर्मसे बंधते हैं और मोक्षमार्गमें तिष्ठेहुए कर्मकर छूटते हैं ऐसा जब है तो तू क्या करेगा ? तेरा तो बांधने छोड़नेका अभिप्राय विफल हुआ।

(२६८)

(२६९)

सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरयिए ।
देवमणुये य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोयलोयं च ।
सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥

जीव अध्यवसानकर अपने सब तिर्यंच नारक देव मनुष्य सभी पर्यायोंको करता है और अनेक प्रकारके पुण्यपापोंको अपने करता है तथा धर्म अधर्म जीव अजीव और लोक अलोक इन सभीको जीव अध्यवसानकर आत्मस्वरूप करता है ।

(२७०)

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥

ये पूर्वोक्त अध्यवसाय तथा इसतरहके अन्य भी अध्यवसान जिनके नहीं हैं वे मुनिराज अशुभ अथवा शुभकर्मसे नहीं लिप्त होते।

(२७१)

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं ।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥

बुद्धि व्यवसाय और अध्यवसान और मति विज्ञान चित्त भाव और परिणाम ये सब एकार्थ ही हैं नामभेद है इनका अर्थ जुदा नहीं है।

(२७२)

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥

पूर्वकथितरीतिसे अध्यवसानरूप व्यवहारनय है वह निश्चयनयसे निषेधरूप जानो जो मुनिराज निश्चयके आश्रित हैं वे मोक्षको पाते हैं।

(२७३)

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतोवि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥

व्रत समिति गुप्ति शील तप जिनेश्वर देवने कहे हैं उनको करता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

(२७४)

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज ।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥

जो अभव्य जीव शास्त्रका पाठभी पढता है परंतु मोक्षतत्त्वका श्रद्धान नहीं करता, तो ज्ञानका श्रद्धान नहीं करनेवाले उस अभव्यका शास्त्र पढना लाभ नहीं करता ।

(२७५)

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥

वह अभव्य जीव धर्मको श्रद्धान करता है प्रतीति करता है रुचि करता है और स्पर्शता है वह संसारभोगके निमित्त जो धर्म है उसीको श्रद्धान आदि करता है परंतु कर्मक्षय होनेका निमित्तरूप धर्मका श्रद्धान आदि नहीं करता ।

(२७६)

(२७७)

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकं च तहा भणइ चरित्तं तु ववहारो ॥

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥

आचारांग आदि शास्त्र तो ज्ञान है तथा जीवादि तत्त्व हैं वे दर्शन जानना और छह कायके जीवोंकी रक्षा चारित्र है इस तरह तो व्यवहारनय कहता है और निश्चयकर मेरा आत्मा ही ज्ञान है मेरा आत्मा ही दर्शन और चारित्र है मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है मेरा आत्मा ही संवर और योग (समाधि-ध्यान) है। ऐसे निश्चयनय कहता है।

(२७८)

(२७९)

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥

जैसे स्फटिकमणि आप शुद्ध है वह ललाई आदि रंगस्वरूप आप तो नहीं परिणमती परंतु वह दूसरे लाल काले आदि द्रव्योंसे ललाई आदि रंगस्वरूप परणमती है इसीप्रकार ज्ञानी आप शुद्ध है वह रागादि भावोंसे आप तो नहीं परिणमता, परंतु अन्य रागादि दोषोंसे रागादिरूप किया जाता है ।

(२८०)

ण य रायदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाणं ॥

ज्ञानी आप ही अपने राग द्वेष मोह तथा कषायभाव नहीं करता, इसकारण वह ज्ञानी उन भावोंका करनेवाला (कर्ता) नहीं है।

(२८१)

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं दु परिणमंतो रायाई बंधदि पुणोवि ॥

राग द्वेष और कषायकर्म इनके होनेपर जो भाव होते हैं उनकर परिणमता हुआ अज्ञानी रागादिकोंको बार बार बांधता है।

(२८२)

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं दु परिणामंतो रायाई बंधदे चेदा ॥

राग द्वेष और कषायकर्मोंके होनेपर जो भाव होते हैं उनकर परिणमता हुआ आत्मा रागादिकोंको बांधता हैं।

(२८३)

(२८४)

(२८५)

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥

अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपच्चखाणं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥

जावं अपडिक्कमणं अपच्चखाणं च दव्वभावाणं ।
कुव्वइ आदा तावं कत्ता सो होइ णायव्वो ॥

(२८३)

(२८४)

(२८५)

अप्रतिक्रमण दो प्रकारका जानना, उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो प्रकारका जानना, इस उपदेशकर आत्मा अकारक कहा है। अप्रतिक्रमण दो प्रकार है एक तो द्रव्यमें दूसरा भावमें उसीतरह अ-प्रत्याख्यान भी दो तरहका है एक द्रव्यमें एक भावमें इस उपदेशकर आत्मा अकारक कहा है। जब तक आत्मा द्रव्य और भावमें अप्रति-क्रमण और अप्रत्याख्यान करता है तब तक वह आत्मा कर्ता होता है ऐसा जानना।

(२८६)

(२८७)

आधाकम्माईया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वइ णाणी परदव्वगुणा उ जे णिच्चं ॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं ॥

अधःकर्मको आदि लेकर जो ये पुद्गलद्रव्यके दोष हैं उनको ज्ञानी कैसे करे ? क्योंकि ये सदा ही पुद्गलद्रव्यके गुण हैं और यह अधःकर्म व उद्देशिक हैं वे पुद्गलमय द्रव्य हैं उनको यह ज्ञानी जानता है कि जो सदा अचेतन कहे हैं वे मेरे किये कैसे हो सकते हैं।

अष्टमो बंधाधिकारः समाप्तः

अथ मोक्षाधिकारः

(२८८)

(२८९)

(२९०)

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयह्मि चिरकालपडिवद्धो ।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणए तस्स ॥

जइ णवि कुणइ च्छेदं ण मुच्चए तेण बंधणवसो सं ।
कालेण उ वहुएणवि ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥

इय कम्मबंधणाणं पएसठिइपयडिमेवमणुभागं ।
जाणंतोवि ण मुच्चइ मुच्चइ सो चेव जइ सुद्धो ॥

(२८८)

(२८९)

(२९०)

अहो देखो जैसे कोई पुरुष बंधनमें बहुत कालका बंधाहुआ उस बंधनके तीव्रमंद (गाढे ढीले) स्वभावको और कालको जानता है कि इतने कालका बंध है। जो उस बंधनको आप काटता नहीं है तो उस बंधनके वशहुआ ही रहता है उसकर छूटता नहीं है ऐसा वह पुरुष बहुत कालमें भी उस बंधसे छूटनेरूप मोक्षको नहीं पाता, उसी प्रकार जो पुरुष कर्मके बंधनोंके प्रदेश स्थिति प्रकृति और अनुभाग ये भेद हैं ऐसा जानता है तौ भी वह कर्मसे नहीं छूटता, जो आप रागादिकको दूर कर शुद्ध हो, वही छूटता है।

(२६१)

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावइ विमोक्खं ॥

जैसे कोई बंधनकर बंधा हुआ पुरुष उन बंधोंको विचारता हुआ (उसका सोच करता हुआ) भी मोक्षको नहीं पाता,उसी तरह कर्मबंधको चिंता करता हुआ जीव भी मोक्षको नहीं पाता ।

(२६२)

जह बंधे छित्तूण य बंधणबद्धो उ पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥

जैसे बंधनसे बंधा पुरुष बंधनको छेदकर मोक्षको पाता है उसीतरह कर्मके बंधनको छेदकर जीव मोक्षको पाता है ।

(२६३)

बंधाणं च सहावं वियाणिश्रो अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणई ॥

बंधोंका स्वभाव और आत्माका स्वभाव जानकर जो पुरुष बंधोंमें विरक्त होता है वह पुरुष कर्मोंकी मोक्ष करता है ।

(२६४)

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएण उ छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥

जीव और बंध ये दोनों निश्चित अपने २ लक्षणोंकर बुद्धि-रूपी छैनीसे इसतरह छेदने चाहियें कि जिस तरह छेदेहुए नानापनको प्राप्त हो जायं अर्थात् जुदे जुदे हो जायं ।

(२६५)

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
बंधो छेएवव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥

जीव और बंध इन दोनोंको निश्चित अपने २ लक्षणोंकर इसतरह भिन्न करना कि बंध तो छिदकर भिन्न हो जाय, और आत्मा ग्रहण कियाजाय ।

(२९६)

कह सो घिप्पइ अप्पा पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा ।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो ॥

शिष्य पूछता है कि वह शुद्धात्मा कैसे ग्रहण किया जा सकता है ? आचार्य उत्तर कहते हैं कि यह शुद्धात्मा प्रज्ञाकर ही ग्रहण किया जाता है । जिस तरह पहले प्रज्ञासे भिन्न किया था उसीतरह प्रज्ञासे ही ग्रहण करना ।

(२९७)

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥

जो चेतनस्वरूप आत्मा है निश्चयसे वह मैं हूं इसतरह प्रज्ञाकर ग्रहण करने योग्य है और अवशेष जो भाव हैं वे मुझसे पर हैं इसप्रकार आत्माको ग्रहण करना (जानना) चाहिये ।

(२६८)

(२६६)

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयओ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥

पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥ युग्मं ॥

प्रज्ञाकर ऐसे ग्रहण करना कि जो देखनेवाला है वह तो निश्चयसे मैं हूं अवशेष जो भाव हैं वे मुझसे पर हैं ऐसा जानना तथा प्रज्ञाकर ही ग्रहण करना कि जो जाननेवाला है वह तो निश्चयसे मैं हूं अवशेष जो भाव हैं वे मुझसे पर हैं ऐसा जानना।

(३००)

को णाम भणिज्ज वुहो णाउं सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥

ज्ञानी अपने स्वरूपको जान और सभी परके भावोंको जानकर ये मेरे हैं ऐसा वचन कोन बुद्धिमान् कहेगा? ज्ञानी पंडित तो नहीं कह सकता। कैसा है ज्ञानी? अपने आत्माको शुद्ध जाननेवाला है।

(३०१)

(३०२)

(३०३)

थेयाई अवराहे कुव्वदि जो सो उ संकिदो भमई ।
मा वज्झेज्जं केणावि चोरोत्ति जणम्मि वियरंतो ॥

जो ण कुणइ अवराहे सो णिस्संको दु जणवए भमदि ।
णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥

एवंहि सावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेया ।
जइ पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥

(३०१)

(३०२)

(३०३)

जो पुरुष चोरीआदि अपराधोंको करता है वह ऐसी शंका-सहित हुआ भ्रमता है कि लोकमें विचरता हुआ मैं चोर ऐसा मालूम होनेपर किसीसे पकड़ा (बांधा) न जाऊं। जो कोई भी अपराध नहीं करता, वह पुरुष देशमें निशंक भ्रमता है उसको बंधनेकी चिंता कभी भी नहीं उपजती (होती) ऐसे मैं जो अपराधसहित हूं तो बँधूंगा ऐसी शंकायुक्त आत्मा होता है और जो निरपराध हूं तो मैं निःशंक हूं कि नहीं बँधूंगा। ऐसे ज्ञानी विचारता है।

(३०४)

(३०५)

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं ।
अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो ॥

जो पुण णिरवराधो चेया णिस्संकिओ उ सो होइ ।
आराहणाए णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो ॥

संसिद्ध राध सिद्ध साधित और आराधित ये शब्द एकार्थ हैं। इसलिये जो आत्मा राधसे रहित हो, वह आत्मा अपराध है और जो आत्मा अपराधी नहीं है वह शंकारहित है और अपनेको मैं हूं ऐसा जानता हुआ आराधनाकर हमेशा वर्तता है।

(३०६)

(३०७)

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥

अपुडिकमणं अप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदा गरहा सोही अमयकुंभो ॥

प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा और शुद्धि इसतरह आठ प्रकार तो विषकुंभ है; क्योंकि इसमें कर्तापनकी बुद्धि संभवती है और अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अपरिहार अधारणा अनिवृत्ति अनिंदा अगर्हा और अशुद्धि इसतरह आठ प्रकार अमृतकुंभ हैं क्योंकि, यहां कर्तापनाका निषेध है कुछ भी नहीं करना इसलिये बंधसे रहित हैं ।

मोक्षाधिकारः समाप्तः

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः

(३०८)

(३०९)

(३१०)

(३११)

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण स होइ ॥

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पंजंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥

(३०८)

(३०९)

(३१०)

(३११)

जो द्रव्य जिन अपने गुणोंकर उपजता है वह उन गुणोंकर अन्य नहीं जानना उन गुणमय ही है जैसे सुवर्ण अपने कटक कडे आदि पर्यायोंकर लोकमें अन्य नहीं है–कटकादि है वह सुवर्ण ही है उसीतरह द्रव्य जानना। उसीतरह जीव अजीवके जो परिणाम सूत्रमें कहे हैं उन परिणामोंकर उस जीव अजीवको अन्य नहीं जानना। परिणाम हैं वे द्रव्य ही हैं। जिसकारण वह आत्मा किसीसे भी नहीं उत्पन्न हुआ है इससे किसीका कियाहुआ कार्य नहीं है और किसी अन्यको भी उत्पन्न नहीं करता, इसलिये वह किसीका कारण भी नहीं है। क्योंकि कर्मको आश्रयकर तो कर्ता होता है और कर्ताको आश्रयकर कर्म उत्पन्न होते हैं ऐसा नियम है अन्यतरह कर्ता कर्मकी सिद्धि नहीं देखी जाती।

(३१६)

अएणाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिओ दु वेदेइ ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणइ उदियं ण वेदेइ ॥

अज्ञानी कर्मके फलको प्रकृतिके स्वभावमें तिष्ठा हुआ भोगता है और ज्ञानी उदयमें आये हुए कर्मके फलको जानता है परंतु भोगता नहीं है ।

(३१७)

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि ।
गुडदुद्धंपि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा हुंति ।।

अभव्य अच्छीतरह अभ्यासकर शास्त्रोंको पढताहुआ भी कर्मके उदयस्वभावको नहीं छोड़ता अर्थात् प्रकृति नहीं बदलती जैसे सर्प गुड़सहित दूधको पीतेहुए भी निर्विष नहीं होते ।

(३१८)

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेइ ।
महुरं कडुयं वहुविहमवेयओ तेण सो होई ॥

ज्ञानी वैराग्यको प्राप्तहुआ कर्मके फलको जानता है कि जो मीठा तथा कड़वा इत्यादि अनेकप्रकार है इसकारण वह भोक्ता नहीं है ।

(३१९)

णवि कुव्वइ णवि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं ।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥

ज्ञानी बहुत प्रकारके कर्मोंको न तो कर्ता है और न भोगता है परंतु कर्मके बंधको और कर्मके फल पुण्य पापोंको जानता ही है ।

(३२०)

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥

जैसे नेत्र है वह देखने योग्य पदार्थको देखता ही है उनका कर्ता भोक्ता नहीं है उसीतरह ज्ञान भी बंध मोक्ष कर्मका उदय और निर्जराको जानता ही है करनेवाला भोगनेवाला नहीं है।

(३२१)

(३२२)

(३२३)

लोयस्स कुणइ विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणंपि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये ॥

लोगसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसइ विसेसो ।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाणवि अप्पओ कुणइ ॥

एवं ण कोवि मोक्खो दीसइ लोयसमणाण दोण्हंपि ।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए ॥

(३२१)

(३२२)

(३२३)

देव नारक तिर्यंच मनुष्य प्राणियोंको लोकके तो विष्णु परमात्मा करता है ऐसा मंतव्य है इसतरह जो यतियोंके भी ऐसा मानना हो कि छह कायके जीवोंको आत्मा करता है तो लोक और यतियोंका एक सिद्धांत ठहरा तो कुछ विशेषता नहीं दीखता। क्योंकि लोकके जैसे विष्णु करता है उसतरह श्रमणोंके भी आत्मा करता है इसतरह कर्ताके माननेमें दोनों समान हुए। इसतरह लोक और श्रमण इन दोनोंमेंसे कोई भी मोक्ष हुआ नहीं दीखता क्योंकि जो देवमनुष्य-असुरसहित लोकोंको जीवोंको नित्य दोनों ही करते हुए प्रवर्तते हैं उनके मोक्ष कैसी।

(३२४)

(३२५)

(३२६)

(३२७)

ववहारभासिएण उ परदव्वं मम भणंति अविदियत्था ।
जाणंति णिच्छयेण उ ण य मह परमाणुमिच्चमवि किंचि ।।

जह कोवि णरो जंपइ अह्मं गामविसयणयररट्ठं ।
ण य होंति ताणि तस्स उ भणइ य मोहेण सो अप्पा ।।

एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवइ एसो ।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणइ ।।

तह्मा ण मेत्ति णिच्चा दोह्णवि एयाण कत्तविवसायं ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहियाणं ।।

(३२४)

(३२५)

(३२६)

(३२७)

जिन्होंने पदार्थका स्वरूप नहीं जाना है वे पुरुष व्यवहारके कहेहुए वचनोंको लेकर कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है और जो निश्चयकर पदार्थोंका स्वरूप जानते हैं वे कहते हैं कि परमाणुमात्र भी कोई मेरा नहीं है। व्यवहारका कहना ऐसा है कि जैसे कोई पुरुष कहे कि हमारा ग्राम है देश है नगर है और मेरे राजा का देश है वहां निश्चयसे विचारा जाय तो वे ग्राम आदिक उसके नहीं हैं वह आत्मा मोहसे मेरा मेरा ऐसा कहता है ।। इसीतरह जो ज्ञानी परद्रव्यको परद्रव्य जानता हुआ परद्रव्य मेरा है ऐसा अपनेको परद्रव्यमय करता है वह निःसंदेह मिथ्यादृष्टि होता है। इसलिये ज्ञानी परद्रव्य मेरा नहीं है ऐसा जानकर परद्रव्यमें इन लौकिकजन तथा मुनियोंके कर्तापनके व्यापारको जानता हुआ ऐसा जानता है कि ये सम्यग्दर्शनकररहित हैं।

(३२८)

(३२९)

(३३०)

(३३१)

मिच्छत्तं जइ पयडी मिच्छाइट्ठी करेइ अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणइ मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छाइट्ठी ण पुण जीवो ॥

अह जीवो पयडी तह पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं ।
तह्मा दोहि यंकद तं दोण्णिवि भुंजंति तस्स फलं ॥

अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा ॥

(३२८)

(३२९)

(३३०)

(३३१)

जीवके जो मिथ्यात्वभाव होता है उसको विचारते हैं कि निश्चयसे यह कौन करता है ? वहां जो मिथ्यात्वनामा मोहकर्मकी प्रकृति पुद्गलद्रव्य है वह आत्माको मिथ्यादृष्टि करती है ऐसा मानाजाय तो सांख्य-मतीसे कहते हैं कि अहो सांख्यमती तेरे मतमें प्रकृति तो अचेतन है वह अचेतन प्रकृति जीवके मिथ्यात्वभावको करनेवाली ठहरी ऐसा बनता नहीं। अथवा ऐसा मानिये कि वह जीव ही पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको करता है तो ऐसा माननेसे पुद्गलद्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुआ जीव मिथ्यादृष्टि नहीं ठहरा ऐसा भी नहीं बन सकता। अथवा ऐसा माना जाय कि जीव और प्रकृति ये दोनों पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको करते हैं तो दोनों-कर किया गया उसका फल दोनों ही भोगें ऐसा ठहरा सो यह भी नहीं बनता। अथवा ऐसा मानिये कि पुद्गलद्रव्य नामा मिथ्यात्वको न तो प्रकृति करती है और न जीव करता है तौभी पुद्गलद्रव्य ही मिथ्यात्व हुआ सो ऐसा मानना क्या झूठ नहीं है ?। इसलिये यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वनामा जीवका जो भाव कर्म है उसका कर्ता तो अज्ञानी जीव है परंतु इसके निमित्तसे पुद्गलद्रव्यमें मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति उत्पन्न होती है।

(३३२)

(३३३)

(३३४)

(३३५)

(३३६)

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिं सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ॥

कम्मेहिं सुहाविज्जइ दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव ॥

कम्मेहिं भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोयं य ।
कम्मेहिं चेव किज्जइ सुहासुहं जित्तियं किंचि ॥

जह्मा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति जं किंचि ।
तह्मा उ सव्वेजीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥

पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्मं च पुरिसमहिलसइ ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसी दु सुई ॥

(३३२)

(३३३)

(३३४)

(३३५)

(३३६)

जीव कर्मोंकर अज्ञानी किया जाता है उसीतरह कर्मोंकर ज्ञानी होता है कर्मोंकर सुआया जाता है उसीप्रकार कर्मोंकर ही जगाया जाता है कर्मोंकर सुखी किया जाता है उसीतरह कर्मोंकर दुखी किया जाता है और कर्मोंकर मिथ्यात्वको प्राप्त कराया जाता है तथा असंयम-को प्राप्त कराया जाता है कर्मोंकर ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक और तिर्यग्लोकमें भ्रमाया जाता है और कर्मोंसे ही जो कुछ शुभ अशुभ है वह किया जाता है। क्योंकि कर्म ही करता है कर्म ही देता है कर्म ही हरता है जो कुछ करता है वह कर्म ही करता है इसलिये सभी जीव अकारक प्राप्त हुए–जीव कर्ता नहीं है। यह आचार्योंकी परिपाटी से आई ऐसी श्रुति है कि पुरुषवेदकर्म तो स्त्रीका अभिलाषी है और स्त्रीवेदनामा कर्म पुरुषको चाहता है।

(३३७)

(३३८)

(३३९)

(३४०)

तह्मा ण कोवि जीवो अबंभचारी उ अह्म उवएसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥

जह्मा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी ।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥

तह्मा ण कोवि जीवो वघायओ अत्थि अह्म उवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं घाएदि इदि भणियं ॥

एवं संखुवएसं जे उ परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वइ अप्पा य अकारया सव्वे ॥

(३३७)

(३३८)

(३३९)

(३४०)

इसलिये कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं है हमारे उपदेशमें तो ऐसा है कि कर्म ही कर्मको चाहता है ऐसा कहा है। जिस कारण दूसरेको मारता है और परकर मारा जाता है वह भी प्रकृति ही है इसी अर्थको लेकर कहते हैं कि यह परघात नामा प्रकृति है इसलिये हमारे उपदेशमें कोई भी जीव उपघात करनेवाला नहीं है क्योंकि कर्म ही कर्मको घातता है ऐसा कहा है। इस तरह जो कोई यति ऐसा सांख्यमतका उपदेश निरूपण करते हैं उनके प्रकृति ही करती है, और आत्मा सब अकारक ही हैं ऐसा हुआ।

(३४१)

(३४२)

(३४३)

(३४४)

अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणई ।
एसो मिच्छसहावो तुह्मं एयं मुणंतस्स ॥

अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिओ उ समयम्हि ।
णवि सो सक्कइ तत्तो हीणो अहिओ य काउं जे ॥

जीवस्स जीवरूवं विच्छरदो जाण लोगमित्तं हि ।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कहं कुणई दव्वं ॥

अह जाणओ उ भावो णाणसहावेण अत्थिइत्ति मयं ।
तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणइ ॥

(३४१)

(३४२)

(३४३)

(३४४)

आचार्य कहते हैं जो, आत्माके कर्तापनेका पक्ष साधनेको तू ऐसा मानेगा कि मेरा आत्मा अपने आत्माको करता है ऐसा कर्तापनका पक्ष मानो तो ऐसे जाननेका तेरा यह मिथ्यास्वभाव है क्योंकि आत्मा नित्य असंख्यातप्रदेशी सिद्धांतमें कहा है उससे जो वह हीन अधिक करनेको समर्थ नहीं होसकते। जीवका जीवरूप विस्तार अपेक्षा निश्चयकर लोकमात्र जानो ऐसा जीवद्रव्य उस परिमाणसे क्या हीन तथा अधिक कैसे कर सकता है? अथवा ऐसा मानिये जो ज्ञायक भाव ज्ञानस्वभावकर तिष्ठता है तो उसी हेतुसे ऐसा हुआ कि आत्मा अपने आपको स्वयमेव नहीं करता॥ इसलिये कर्तापन साधनेको विवक्षा पलटकर पक्ष कहा था सो नहीं बना। यदि कर्मका कर्ता कर्मको ही मानें तो स्याद्वादसे विरोध ही आयेगा इसलिये कथंचित् अज्ञान अवस्थामें अपने अज्ञानभावरूप कर्मका कर्ता माननेमें स्याद्वादसे विरोध नहीं है।

(३४५)

(३४६)

(३४७)

(३४८)

केहिंचि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो ।
जह्मा तह्मा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥

केहिंचि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो ।
जह्मा तह्मा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥

जो चेव कुणइ सोचिय ण वेयए जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णायव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिदो ॥

अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥

(३४५)

(३४६)

(३४७)

(३४८)

जिसकारण जीव नामा पदार्थ कितनी एक पर्यायोंकर तो विनाशको पाता है और कितनी एक पर्यायोंसे नहीं विनष्ट होता इसकारण वह ही करता है अथवा अन्य कर्ता होता है एकांत नहीं स्याद्वाद है। जिसकारण जीव कितनी एक पर्यायोंसे विनसता है और कितनी एक पर्यायोंसे नहीं विनसता, इसकारण वही जीव भोक्ता होता है अथवा अन्य भोगता है वह नहीं भोगता ऐसा एकांत नहीं है स्याद्वाद है। और जिसका ऐसा सिद्धांत (मत) है कि जो जीव करता है वह नहीं भोगता अन्य ही भोगनेवाला होता है वह जीव मिथ्यादृष्टि जानना अरहंतके मतका नहीं है। तथा जिसका ऐसा सिद्धांत है कि अन्य कोई करता है और दूसरा कोई भोगता है वह जीव मिथ्यादृष्टि जानना अरहंतके मतका नहीं है।

(३४९)

(३५०)

(३५१)

जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होइ ॥

जह सिप्पिओ उ करणेहिं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणेहिं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥

जह सिप्पिओ उ करणाणि गिह्णइ ण सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणाणि उ गिह्णइ ण य तम्मओ होइ ॥

(३४६)

(३५०)

(३५१)

जैसे सुनार आदि कारीगर आभूषणादिक कर्मको करता है परंतु वह आभूषणादिकोंसे तन्मय नहीं होता उसीतरह जीव भी पुद्गलकर्मको करता है। तौभी उससे तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी हथौड़ा आदि करणोंसे कर्म करता है। परंतु वह उनसे तन्मय नहीं होता, उसीतरह जीव भी मनवचन काय आदि करणोंसे कर्मको करता है तौभी उनसे तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी करणोंको ग्रहण करता है तौभी वह उनसे तन्मय नहीं होता उसीतरह जीव मनवचन कायरूप करणोंको ग्रहण करता है तौ भी उनसे तन्मय नहीं होता।

(३५२)

(३५३)

(३५४)

(३५५)

जह सिप्पिउ कम्मफलं भुंजदि ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजइ ण य तम्मओ होइ॥

एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकयं तु जं होई॥

जह सिप्पिओ उ चिट्ठं कुव्वइ हवइ य तहा अणण्णो से।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वइ हवइ य अणण्णो से॥

जह चिट्ठं कुव्वंतो उ सिप्पिओ णिच्च दुक्खिओ होई।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो॥

(३५२)

(३५३)

(३५४)

(३५५)

जैसे शिल्पी आभूषणादि कर्मोंके फलको भोगता है तौ भी वह उनसे तन्मय नहीं होता उसीतरह जीव भी सुख दुःख आदि कर्मके फलको भोगता है परंतु उनसे तन्मय नहीं होता। इसतरहसे तो व्यवहारका मत संक्षेपसे कहने योग्य है और जो निश्चयके वचन हैं वे अपने परिणामोंसे किये होते हैं उनको सुनो। जैसे शिल्पी अपने परिणामस्वरूप चेष्टारूप कर्मको करता है परंतु वह उस चेष्टासे जुदा नहीं होता है तन्मय है उसीतरह जीव भी अपने परिणामस्वरूप चेष्टारूप कर्मको करता है उस चेष्टाकर्मसे अन्य नहीं है तन्मय है। जैसे शिल्पी चेष्टा करता हुआ निरंतर दुःखी होता है उस दुःखसे जुदा नहीं है तन्मय है उसीतरह जीव भी चेष्टा करता हुआ दुःखी होता है।

(३५६)

(३५७)

(३५८)

(३५९)

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह जाणओ दु ण परस्स जाणओ जाणओ सो दु ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह पासओ दु ण परस्स पासओ पासओ सो दु ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होइ।
तह संजओ दु ण परस्स संजओ संजओ सो दु ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥

(३५६)

(३५७)

(३५८)

(३५९)

जैसे सफेदी करनेवाली कलई अथवा खडियामट्टी चूना आदि सफेद वस्तु वह अन्य जो भींत आदि वस्तु उसको सफेद करनेवाली है इससे खड़िया नहीं है वह तो भींतके बाहर भागमें रहती है भींतरूप नहीं होती खड़िया तो आप खड़ियारूप ही है उसीतरह जाननेवाला है वह परद्रव्यको जाननेवाला है इसकारणसे ज्ञायक नहीं है आप ही ज्ञायक है जैसे खड़िया० उसीतरह देखनेवाला परद्रव्यको देखनेवाला होनेसे दर्शक नहीं है आप ही देखनेवाला है। जैसे खड़िया०... उसीतरह संयत परको त्यागनेसे संयत नहीं है आप ही संयत है। जैसे खड़िया०... उसीतरह श्रद्धान परके श्रद्धान से श्रद्धान नहीं है आप ही श्रद्धान है।

(३६०)

(३६१)

(३६२)

एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ।।

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणइ णाया वि सयेण भावेण ।।

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं पस्सइ जीवोवि सयेण भावेण ।।

(३६०)

(३६१)

(३६२)

ऐसा दर्शन ज्ञान चारित्रमें निश्चयनयका कहा हुआ वचन है तथा व्यवहारनयके वचन है उसे संक्षेपसे कहते हैं उसको सुनो। जैसे खड़िया अपने स्वभावकर भींत आदि परद्रव्योंको सफेद करती है उसीतरह जाननेवाला भी परद्रव्यको अपने स्वभावकर जानता है।

(३६३)

(३६४)

(३६५)

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ णायावि सयेण भावेण ॥

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहइ सम्मदिट्ठी सहावेण ॥

एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णायव्वो ॥

(३६३)

(३६४)

(३६५)

जैसे खडिया०... उसीतरह ज्ञाता भी अपने स्वभावकर परद्रव्यको देखता है जैसे खड़िया०...उसीतरह ज्ञाता भी अपने स्वभावकर परद्रव्यको त्यागता है जैसे खड़िया०... उसीतरह ज्ञाता भी अपने स्वभावकर परद्रव्यका श्रद्धान करता है इसतरह जो दर्शनज्ञानचारित्रमें व्यवहारका विशेषकर निश्चय कहा है इसीतरह अन्यपर्यायोंमें भी जानना चाहिये।

(३६६)

(३६७)

(३६८)

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे विसये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे कम्मे ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे काये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥

(३६६)

(३६७)

(३६८)

दर्शन ज्ञान चारित्र हैं वे अचेतन विषयोंमें तो कुछ भी नहीं हैं इसलिये उन विषयोंमें आत्मा क्या घात करे ? घातनेको कुछ भी नहीं। दर्शन ज्ञान चारित्र अचेतन कर्ममें कुछ भी नहीं हैं। इसलिये उस कर्ममें आत्मा क्या घात करे ? कुछ भी घातनेको नहीं, दर्शन ज्ञान चारित्र अचेतन कायमें कुछ भी नहीं हैं इसलिये उन कार्योंमें आत्मा क्या घाते ? कुछ भी घातनेको नहीं।

(३६९)

(३७०)

(३७१)

णाणस्स दंसणस्स य भणिओ घाओ तहा चरित्तस्स ।
णवि तहिं पुग्गलदव्वस्स कोऽवि घाओ उ णिद्दिट्ठो ।।

जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु ।
तह्मा सम्माइट्ठिस्स णत्थि रागो उ विसएसु ।।

रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा ।
एएण कारणेण उ सद्दादिसु णत्थि रागादि ।।

(३६९)

(३७०)

(३७१)

घात ज्ञानका दर्शनका तथा चारित्रका कहा है वहां पुद्गल द्रव्यका तो कुछ भी घात नहीं कहा। जो कुछ जीवके गुण हैं वे निश्चयकर परद्रव्यों में नहीं है इसलिये सम्यग्दृष्टिके विषयोंमें राग ही नहीं है। राग द्वेष मोह ये सब जीवके ही एक (अभेद) रूप परिणाम हैं इसीकारण रागादिक शब्दादिकोंमें नहीं है।

(३७८)

अण्णदविएण अण्णदवियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ ।
तह्मा उ सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ॥

(३७२)

अन्यद्रव्यकर अन्यद्रव्यके गुणका उत्पाद नहीं किया जासकता इसलिये यह सिद्धांत है कि सभी द्रव्य अपने अपने स्वभावसे उपजते हैं।

(३७३)

(३७४)

(३७५)

णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंति वहुयाणि ।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ।।

पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिओ किंचिवि किं रूससि अबुद्धो ।।

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणइ सुणसु मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं सोयविसयमागयं सद्दं ।।

(३७३)

(३७४)

(३७५)

बहुत प्रकारके निंदा और स्तुतिके वचन हैं उनरूप पुद्गल परिणमते हैं उनको सुनकर यह अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मुझको कहा है इसलिये ऐसा मान रोस (गुस्सा) करता है और संतुष्ट होता है। शब्दरूप परिणत हुआ पुद्गलद्रव्य है सो यह पुद्गलद्रव्यका गुण है, अन्य है, इसलिये हे अज्ञानी जीव तुझको तो कुछ भी नहीं कहा, तू अज्ञानी हुआ क्यों रोस करता है ?। अशुभ अथवा शुभ शब्द तुझको ऐसा नहीं कहता कि मुझको सुन और श्रोत्र इंद्रियके विषयमें आये हुए शब्दके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड़ नहीं प्राप्त होता।

(३७६)

(३७७)

(३७८)

असुहं सुहं च रूवं ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं ॥

असुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं गंधं ॥

असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥

(३७६)

(३७७)

(३७८)

अशुभ अथवा शुभ रूप तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको देख और चक्षु इंद्रियके विषयमें आये हुए रूपके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशोंको छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ अथवा शुभ गंध तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको सूंघ और घ्राण इंद्रियके विषयमें आये हुए गंधके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ वा शुभ रस तुझको ऐसा नहीं कहता कि मुझको तू आस्वाद कर और रसना इंद्रियके विषयमें आये रसके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता।

(३७९)

(३८०)

(३८१)

(३८२)

असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुससु मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥

असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं तु गुणं ॥

असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं दव्वं ॥

एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छई मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो ॥

(३७६)

(३८०)

(३८१)

(३८२)

अशुभ वा शुभ स्पर्श तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको स्पर्श (छूले) और स्पर्शन इंद्रियके विषयमें आये हुए स्पर्शके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ वा शुभ द्रव्यका गुण तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको जान, और बुद्धिके विषयमें आये हुए गुणके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़कर नहीं प्राप्त होता। अशुभ वा शुभ द्रव्य तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जान, और बुद्धिके विषयमें आये हुए द्रव्यके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता। यह मूढ जीव ऐसा जानकर भी उपशम भावको नहीं प्राप्त होता और परके ग्रहण करनेको मन करता है क्योंकि आप कल्याणरूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान उसको नहीं प्राप्त हुआ है।

(३८३)

(३८४)

(३८५)

(३८६)

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ।।

कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि वज्झइ भविस्सं ।
तत्तो णियत्तए जो सो पच्चक्खाणं हवइ चेया ।।

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया ।।

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वइ णिच्चं य पडिक्कमदि जो ।
णिच्चं आलोचेयइ सो हु चरित्तं हवइ चेया ।।

(३८३)

(३८४)

(३८५)

(३८६)

पहले अतीत कालमें किये जो शुभ अशुभ ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार विशेषरूप कर्म हैं उनसे जो चेतयिता अपने आत्माको छुड़ाता है वह आत्मा प्रतिक्रमणस्वरूप है और जो आगामी कालमें शुभ तथा अशुभ कर्म जिस भावके होनेपर बंधे उस अपने भावसे जो ज्ञानी छूटै वह आत्मा प्रत्याख्यानस्वरूप है। और जो वर्तमान कालमें शुभ अशुभ कर्म अनेक प्रकार ज्ञानावरणादि विस्तार-रूप विशेषोंको लिये हुए उदय आया है उस दोषको जो ज्ञानी अनुभवता है उसका स्वामिपना कर्तापना छोड़ता है वह आत्मा निश्चयसे आलोचना स्वरूप है इसतरह जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करता है नित्य प्रतिक्रमण करता है नित्य आलोचना करता है वह चेतयिता निश्चयकर चारित्र स्वरूप है।

(३८७)

(३८८)

(३८९)

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।।

वेदंतो कम्मफलं मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।।

वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।।

(३८७)

(३८८)

(३८९)

जो आत्मा कर्मके फलको अनुभवता हुआ कर्मफलको आपरूप ही करता है मानता है वह फिर भी दुःखका बीज ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मको बांधता है। जो कर्मके फलको वेदता हुआ आत्मा उस कर्मफलको ऐसा जाने कि यह मैंने किया है वह फिर भी...जो आत्मा कर्मके फलको वेदता हुआ सुखी और दुःखी होता है वह चेतयिता०...।

(३६०)

(३६१)

(३६२)

सत्थं णाणं ण हवइ जह्मा सत्थं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥

सद्दो णाणं ण हवइ जह्मा सद्दो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥

रूवं णाणं ण हवइ जह्मा रूवं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥

(३६०)

(३६१)

(३६२)

शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ जानता नहीं है, जड है, इसलिये ज्ञान अन्य है, शास्त्र अन्य है; ऐसे जिन भगवान जानते हैं कहते हैं। शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ जानता नहीं है इसलिये ज्ञान अन्य है, शब्द अन्य है, ऐसा जिनदेव कहते हैं रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ जानता नहीं है इसलिये ज्ञान अन्य है, रूप अन्य है, ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(३६३)

(३६४)

(३६५)

वरणो णाणं ण हवइ जह्मा वरणो ण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं अरणं वरणं जिणा विंति ॥

गंधो णाणं ण हवइ जह्मा गंधो ण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं अरणं गंधं जिणा विंति ॥

ण रसो दु हवदि णाणं जह्मा दु रसो ण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं रसं य अरणं जिणा विंति ॥

(३९३)

(३९४)

(३९५)

वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है वर्ण अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है गंध अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। और रस ज्ञान नहीं है क्योंकि रस कुछ जानता नहीं है इसलिये ज्ञान अन्य है रस अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(३६६)

(३६७)

(३६८)

फासो ण हवइ णाणं जह्मा फासो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥

कम्मं णाणं ण हवइ जह्मा कम्मं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥

धम्मो णाणं ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥

(३९६)

(३९७)

(३९८)

स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है स्पर्श अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कर्म कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है कर्म अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्म कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है धर्म अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(३६६)

(४००)

(४०१)

णाणमधम्मो ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥

कालो णाणं ण हवइ जह्मा कालो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा विंति ॥

आयासंपि ण णाणं जह्मा यासं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं यासं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥

(३९९)

(४००)

(४०१)

अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्म कुछ नहीं जानता इसलिये ज्ञान अन्य है अधर्म अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं काल ज्ञान नहीं है क्योंकि काल कुछ नहीं जानता इसलिये ज्ञान अन्य है काल अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। आकाश भी ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश कुछ नही जानता इसलिये ज्ञान अन्य है आकाश अन्य है ऐसा जिनदेवने कहा है।

(४०२)

(४०३)

(४०४)

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा ।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥

जह्मा जाणइ णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणओ णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥

णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥

(४०२)

(४०३)

(४०४)

उसी प्रकार अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि अध्यवसान अचेतन है इसलिये ज्ञान अन्य है अध्यवसान अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। इसलिये जीव ज्ञायक है वही ज्ञान है क्योंकि निरंतर जानता है और ज्ञान ज्ञायकसे अभिन्न है जुदा नहीं है ऐसा जानना चाहिये और ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है संयम है अंगपूर्वगत सूत्र है और धर्म अधर्म है तथा दीक्षा भी ज्ञान है ऐसा ज्ञानीजन अंगीकार करते (मानते) हैं।

(४०५)

(४०६)

(४०७)

अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारओ हवइ एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पुग्गलमओ उ ॥

णवि सक्कइ घित्तुं जं ण विमोत्तुं जं य जं परद्दव्वं ।
सो कोवि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वावि ॥

तह्मा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिण्हए किंचि ।
णेव विमुंचइ किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥

(४०५)

(४०६)

(४०७)

इस प्रकार जिसका आत्मा अमूर्तीक है वह निश्चयकर आहारक नहीं है क्योंकि आहार मूर्तीक है वह आहार तो पुद्गलमय है। जो परद्रव्य है वह ग्रहण भी नहीं किया जा सकता और छोड़ाभी नहीं जासकता वह कोई ऐसाही आत्माका गुण प्रायोगिक तथा वैस्रसिक है। इसलिये जो विशुद्ध आत्मा है वह जीव अजीव परद्रव्यमेंसे किसीको भी न तो ग्रहणही करता है और न किसीको छोड़ता है।

(४०८)

(४०६)

पासंडीलिंगाणि व गिहलिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥

ण उ होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेयंति ॥

(४०८)

(४०९)

पाखंडिलिंग अथवा गृहिलिंग ऐसे बहुत प्रकारके बाह्य लिंग हैं उनको धारण कर अज्ञानी जन ऐसा कहते हैं कि यह लिंग ही मोक्षका मार्ग है, आचार्य कहते हैं कि लिंग मोक्षका मार्ग नहीं है क्योंकि अर्हंत देव भी देहसे निर्ममत्व हुए लिंगको छोड़कर दर्शनज्ञानचारित्रको ही सेवते हैं।

(४१०)

ण वि एस मोक्खमग्गो पाखंडीगिहिमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥

पाखंडी लिंग और गृहस्थलिंग यह मोक्षमार्ग नहीं है, दर्शनज्ञानचारित्र हैं वे मोक्षमार्ग हैं ऐसा जिनदेव कहते हैं

(४११)

तह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥

जिसकारण द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नहीं है इस कारण गृहस्थों कर अथवा गृहत्यागी मुनियोंकर ग्रहण किये गये लिंगोंको छोड़कर अपने आत्माको दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप मोक्षमार्गमें युक्त करो। यह श्रीगुरुओंका उपदेश है।

(४१२)

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥

हे भव्य तू मोक्षमार्गमें अपने आत्माको स्थापनकर उसीका ध्यानकर उसीको अनुभवगोचर कर और उस आत्मामें ही निरंतर विहार कर अन्यद्रव्योंमें मत विहारकर ।

(४१३)

पाखंडीलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहिं ण णायं समयसारं ॥

जो पुरुष पाखंडीलिंगोंमें अथवा बहुत भेदवाले गृहस्थलिंगोंमें ममता करते हैं अर्थात् हमको ये ही मोक्षके देनेवाले हैं ऐसी, उन पुरुषोंने समयसारको नहीं जाना ।

(४१४)

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे ।
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥

व्यवहारनय तो मुनि श्रावकके भेदसे दोनोंही प्रकारके लिंगों को मोक्षके मार्ग कहता है और निश्चयनय सभी लिंगोंको मोक्षमार्गमें इष्ट नहीं करता ।

(४१५)

जो समयपाहुडमिणं पडिहूणं अत्थतच्चदो णाउं ।
अत्थे ठाही चेया सो होही उत्तमं सोक्खं ॥

जो चेतयिता पुरुष-भव्यजीव इस समय प्राभृतको पढकर अर्थसे और तत्त्वसे जानकर इसके अर्थमें ठहरेगा वह उत्तम सुख स्वरूप होगा ।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार समाप्तः